नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ६७
संवत् २०१६
अंक ४

विषयसूची

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ६७] माघ, संवत् २०१६ [अंक ४

नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों के खोजविवरण : अपेक्षित संशोधन

मुनि कांतिसागर

•

अज्ञात के प्रति उत्कंठा मानवसभ्यता और संस्कृति की प्रेरक रही है। अज्ञात से ज्ञात की ओर रमण करनेवाली मानवान्वेषण प्रवृत्ति ने अद्यतन विकसित युग को जन्म दिया है। अनुशीलन का क्षेत्र अपनी व्यापकता और सूक्ष्मता के साथ मानव मस्तिष्क को सदा चुनौती देता रहा है। परिणामस्वरूप एक अन्वेषक की उपलब्धि भविष्य में कुछ और माँग कर बैठती है। भावी शोधक उसी की पूर्ति में रत हो जाता है। अपूर्णता की पूर्णता और पूर्णता की विकासजन्य अपूर्णता, यही चक्र गतिमान होता रहता है। फलतः अज्ञात के विस्मयोत्पादक रहस्य प्रकट होते रहते हैं। अन्वेषक उन्हें जानकर एक अनुपम तृप्ति का अनुभव करता है।

अन्वेषक भावी शोधार्थियों को दिशाबोध ही नहीं देता अपितु अनुसधान की अज्ञात रहस्यमयी वीथिकाओं को भी प्रकाशित करता है। अतएव मूल अन्वेषक को अपने शोधविषयक निष्कर्षों के निर्माण मे नितात सतर्क, स्पष्ट एवं सत्यनिष्ठ रहना पड़ता है, अन्यथा आगतुक शोधार्थी अन्वेषक के सदिग्ध मार्ग मे पड़कर भ्रमित हो जायगा।

हिंदी अनुशीलन का इतिहास लगभग एक शती से आगे नहीं जाता। इस बीच हिंदी भाषा और साहित्य विषयक जो भी मूल्यवान् तथ्य प्रकट हुए हैं उनका सशोधन परिमार्जन नव प्राप्त साधन सामग्री के आलोक मे आवश्यक हो गया है क्योंकि नव्य गवेषक अतीत के स्वर्णिम आलोक में वर्तमान का सुदृढ़ निर्माण करता है। हिंदी भाषा और साहित्य के गवेषणाक्षेत्र मे ऐसे प्रबंधप्रयासों की कमी नहीं हैं कि जिनमे परवर्ती शोधार्थी ने पूर्ववर्ती अन्वेषक के भ्रम को परिपुष्ट न किया हो। आज का युग अनुसधान की दृष्टि से पर्याप्त प्रगतिशील रहा है और नित्य नूतन शोधमूलक साधन समुपस्थित होते ही रहते हैं। अब जिनके निकट प्राचीन हस्तलिखित ग्रथो का बाहुल्य है वे भी इनकी ऐतिहासिक उपादेयता समझने लगे हैं। एक समय था जब सकीर्णता के कारण या किसी अज्ञात भय के कारण ग्रथों के दर्शन दुर्लभ थे वहाँ आज अनुशीलन को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। विस्तृत और आवश्यक ज्ञातव्ययुक्त सूचीपत्र प्रकाशित किए जा रहे हैं और शोधक को बिना किसी सकोच साधन प्राप्त हो जाते हैं। हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र म ये शुभ लक्षण हैं। अतः आज का वैज्ञानिक युग पूर्वकालिक सीमित सामग्री के आधार पर निकाले गए सदिग्ध तथ्यों का सप्रमाण परिमार्जन चाहता है।

बिना कारण कोई भी कार्य नहीं होता, यह एक स्वाभाविक नियम है। गत कुछ वर्षों से मुझे राजस्थानशासन की कृपा से उदयपुर मे रहने का अवसर मिला। इन दिनों मैंने अपने हस्तलिखित ग्रथसग्रह को विशिष्ट दृष्टि से टटोला और जो भी अज्ञात अर्थात् हिंदी भाषा और साहित्य के अद्यावधि प्रकाशित इतिहासों में अनुल्लिखित कृतियाँ थीं उनके आदि और अतिम भागों के टिप्पण तैयार किए। परिणामस्वरूप एक महाकाय ग्रंथ ही—राजस्थान का अज्ञात साहित्यवैभव—तैयार हो गया। इसमे लगभग २५० से अधिक कवियों की ३५० ऐसी कृतियाँ समाविष्ट हो गई जिनका विवरण कहीं पर भी आज तक प्रकाशित तो क्या उल्लिखित ही नहीं था। इस अवसर पर मुझे प्राप्त हिंदी के शोधविवरणों को तथा अन्य एतद्विषयक साधन सामग्री को नव्य प्रकाश मे अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने अनुभव किया कि शोधक या अन्वेषक के स्वरूप प्रमाद, सामग्रीविषयक समुचित मूल्याकन के अज्ञान एव अपेक्षित शोधमस्तिष्क के अभाव में उनमे कतिपय ऐसी भ्रांतियाँ घर कर गई हैं जो शोध के क्षेत्र में शोभनीय नहीं। आश्चर्य तो इस बात

का है कि वर्षों तक भ्रम की परंपरा अविलंब गति से चलती रही। मिश्रबंधुविनोद ही क्यों कई परवर्ती इतिहासकार भूलों से प्रभावित होते गए। क्योंकि हमारे यहाँ बहुत कम संशोधक ऐसे हैं जो अपनी गवेषणा में आनेवाले मूल ग्रंथों को देखने का कष्ट करते हैं। ऐसे अन्वेषक भी जिनके समक्ष मूल रचनाएँ विद्यमान रहती है, जब तथ्यसंकलन मे कहीं कहीं असफल प्रमाणित हुए हैं तो अन्य विद्वानों की तो बात ही क्या कही जाय। अतः परिमार्जन आवश्यक हो गया। संभव है भविष्य मे नव्य साहित्यिक सामग्री समुपलब्ध होने पर इन पंक्तियों के लेखक के निष्कर्षों का परिमार्जन भी आवश्यक समझा जाय। शोध के क्षेत्र में ऐसे प्रयत्न सदैव अभिनंदनीय ही होते हैं। क्योंकि अनुसंधान की प्रवृत्ति ही ऐसी है कि सामान्य तत्व का किसी वस्तुविशेष के साथ विशिष्ट संबंध निकल आने पर दीर्घ कालिक साधनोपरांत निर्मित विशेषज्ञों के निष्कर्ष बदल जाते हैं। साथ ही साधारण उल्लेख कभी कभी बहुत बड़ी ऐतिहासिक उलझन सरलता से सुलझा देता है। उदाहरणार्थ राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान की ओर से अभी अभी महाकवि उदयराज द्वारा प्रणीत 'राजविनोद महाकाव्यम्' प्रकाशित हुआ है जो गुजरात के महमूद बेघड़ा के इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालता है। इसके पृष्ठ ३८ पर दाहोदवाला शिलोत्कीर्ण लेख उद्धृत है। इसकी विवेचना करते हुए डा० हँसमुखलाल धीरजलाल साँकलिया ने शिलोत्कीर्ण लेखान्तर्गत 'अहम्मदपुर' को गुजरात का पाटनगर अहमदाबाद मानने की संभावना प्रकट की थी, परंतु एक हिंदी की रचना 'जसवंत चातुर्मास' (रचनाकाल सं० १६६१) जो एक धार्मिक कृति है, से अहम्मदापुर की गुत्थी सुलझ गई और प्रमाणित हो गया कि उसकी स्थिति खंभात और बड़ोदा के मध्यवर्ती भूभाग मे है।

शताब्दियों से भारत मे हस्तलिखित ग्रंथों का प्राचुर्य रहा है। ज्ञान को आत्मा का मूल गुण माना गया है। अतः धार्मिक दृष्टि से भी ज्ञानोपासना का रहस्य जनमानस को प्रभावित करता रहा है। शास्त्रों मे ज्ञानोपासनार्थ ग्रंथलेखन का महत्व वर्णित है।

भारतीय संस्कृति और इतिहास को उज्ज्वल करनेवाले हस्तलिखित ग्रंथों की उपेक्षित अवस्था देखकर लाहौर के पं० राधाकृष्ण ने सन् १८६८ में भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया और ग्रंथान्वेषणविषयक प्रस्ताव स्वीकार कराया। परिणामस्वरूप डा० कीलहोर्न, भांडारकर, बूलर, वेबर, पीटर्सन, बर्नेल, राजेंद्रलाल मित्र, हरप्रसाद शास्त्री आदि अनेक गवेषकों के श्रम से एतद्विषयक खोजवृत्तात प्रकट हुए, बहुत सी मौलिक हस्तलिखित ग्रंथसामग्री प्रकाश में आई।

ऐसे ही प्रयत्नों के आधार पर डा० आफ्रेक्ट ने अपनी शोधप्रदर्शक कृति 'कैटलोगस कैटलोगरम्' प्रस्तुत की। यद्यपि आज उसमें परिवर्द्धन की पर्याप्त आवश्यकता प्रतीत होती है तथापि इस सुप्रयास की मुक्तकंठ से सराहना ही करनी पड़ेगी। सूचित कार्य संस्कृत भाषा में गुंफित रचनाओं तक ही सीमित था।

नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना के साथ ही हिंदी के अरक्षित उपेक्षित हस्तलिखित ग्रंथों की उपादेयता पर ध्यान गया और तात्कालिक उत्तरप्रदेशीय शासन से इनकी रक्षा के हेतु निवेदन किया गया। परिणाम अनुकूल रहा और शासन ने आर्थिक सहायता भी प्रदान की। सन् १८९९ में जो महत्वपूर्ण शोध-विषयक कार्य प्रारंभ हुआ वह आज तक समुचित रीति से संपादित हो रहा है। पर आज प्रारंभ के वृत्तांत प्राप्त नहीं हैं। ८ खोज रिपोर्टों के आधार पर संक्षिप्त विवरण सं० १९८० में प्रकाशित कर सभा ने इस अभाव की आंशिक पूर्ति की है। यह भी आज परिमार्जन की अपेक्षा रखता है। इस प्रकाशन में गवेषणा पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। यह कार्य उन दिनों संपन्न हुआ जिन दिनों हस्तलिखित ग्रंथों के स्वामी अपनी यह निधि देना तो रहा दूर दर्शन तक की आज्ञा देना अनुचित समझते थे। पर सभा के उत्साही और लगनशील कार्यकर्ताओं ने जो धैर्य का परिचय दिया है वह आज भी अनुकरणीय है। मिश्रबंधुविनोद इन्हीं खोजवृत्तांतों की परिणति है। हिंदी भाषा और इतिहास की सर्वाधिक जानकारी खोजवृत्तांतों एवं इनसे ही मिलती है। ज्ञानविषयक तात्कालिक सीमित सामग्री के आधार पर जो जो अशुद्धियाँ रह गई उन्हें विनोदकार ने दुहराया और बाद के खोजवृत्तांत भी इनसे अछूते न रहे। इन स्खलनाओं का एक कारण यह जान पड़ता है कि मूल ग्रंथ देखने का कष्ट बहुत कम व्यक्ति उठा पाते हैं और कहीं अन्वेषक ने प्रमादवश कोई असत्य उल्लेख कर दिया तो वह ब्रह्मवाक्य हो जाता है। आगे की पंक्तियों से इस तथ्य का आभास मिल जायगा। कहीं कहीं तो अन्वेषकों ने मूल तथ्यों की उपेक्षा कर डाली है और कहीं कहीं जो तथ्य नहीं थे, उनकी निराधार उद्‌भावना कर ली है और निरीक्षकों ने उन्हीं भूलों को अपनी प्रस्तावनाओं में दुहराया है।

हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों के १३, १४, १५, १६, १८ विवरण ही मेरे देखने में आए हैं, शेष मैं नहीं देख सका हूँ। अतः मैं यहाँ १३वें विवरण को छोड़कर शेष पर ही अपने विचार प्रस्तुत करूँगा। यहाँ यह बताने की शायद ही आवश्यकता रह जाती है कि आचार्यत्व के लिये लिखे जानेवाले महानिबंधों के ये विवरण ही मूलाधार होते हैं। हिंदी भाषा और इतिहास के अद्यतन युगीन सभी लेखक इनसे अनुप्राणित हुए हैं और जिन कृतियों का विवरण तथा कवियों के परिचय इन विवरणों में संकलित हैं उनकी रचनाओं के भविष्य में भी मिलने की पूर्ण संभावना है।

अतः जो भी अशुद्धियाँ हैं उनका परिमार्जन इसलिये अपेक्षित है कि भविष्य में इन भूलों को दुहराने का अवसर न आए।

विवरण १४, १५ और १६ के निरीक्षक थे स्वर्गीय डा० पीतांबरदत्त जी बड़थ्वाल और १८ वें के हैं हिंदी के मान्य विद्वान् श्री विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र। दोनों ने अपनी पाडित्यपूर्ण सूक्ष्म दृष्टि से अपना काम सपादित करने मे जो दाक्षिण्य प्रदर्शित किया है वह सदैव अभिनंदनीय रहेगा। इनके रक्तशोषक श्रम के परिणाम-स्वरूप जो प्रकाश साहित्यिक जगत् को प्राप्त हुआ, कुछ अशों मे अभूतपूर्व है।

सभा के हस्तलिखित खोजविभाग के विद्वान् निरीक्षक और परिश्रमी अन्वेषक यद्यपि पूरी सावधानी के साथ अपना कार्य सपादन करते हैं और भविष्य मे करेंगे तथापि कुछ बातों की ओर पुनः ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक जान पड़ता है।

१ – पहली बात तो यह है कि विवरणकार का यह प्राथमिक कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे कृति एव कृतिकार के सबंध मे जो भी आवश्यक और प्रमाणभूत सामग्री देना चाहे, यथासभव कवि के ही शब्दों मे देनी चाहिए। मान लीजिए किसी कवि ने आत्मवृत्त रचना मे नहीं दिया है तो उसकी अन्य रचना से परिचय दे देना चाहिए। विवरणों मे भारमल्लादि कई कवियों के बारे मे अनभिज्ञता प्रकट की गई है जब कि कई रचनाओं मे रचनाकाल दिया गया है।

२ – हस्तलिखित ग्रथों का विवरण लेना और कृतिकार का परिचय ठीक से देना सरल कार्य नहीं है। एतदर्थ पुरातन लिपि का गंभीर ज्ञान अपेक्षित है। यदि पढ़ने मे तनिक भी भूल हो जाय तो भ्राति फैलने की पूरी सभावना रहती है, उदाहरणार्थ १८ वें विवरण में उदय (सं० १५, पृष्ठ ४७) का परिचय देते हुए ऐसी भूल हो गई है कि रचना तो है मुनि महेश की और बता दी गई है उदय की। यहाँ उद्यम को विवरणकार ने उदय पढ़ लिया और महेश को महिमा समझ लिया। कहीं कहीं कवि का पूरा विवरण कृति में मिलने के उपरात परिचय के लिये मौन रह जाना पड़ता है, परतु उसकी परंपरा पर ध्यान दिया जाय तो शिष्य प्रशिष्यादि की रचनाओं से समस्या सुलझ सकती है। विवरण लेनेवालों को कम से कम कृति मे अन्य ऐतिहासिक तथ्य हो तो उसे भी ले लेना चाहिए ताकि उसका अन्य उपयोग किया जा सके। पंद्रहवें विवरण की सं० ७७ मे निंबार्कसंप्रदाय की परंपरा पूरी नोट की होती तो बहुत अच्छा रहता, कारण कि वैष्णवसंप्रदायों मे यही एक ऐसा संप्रदाय है जिसपर समुचित प्रकाश अपेक्षित है।

३ – अन्वेषक को कम से कम प्राचीन साहित्य का अच्छा नहीं तो सामान्य ज्ञान होना ही चाहिए ताकि विवरण देते समय पाठशुद्धि का खयाल रख

सके। प्रकाशित सभी विवरणों मे से जिन प्रतियों का संग्रह मेरे पास था उनको विवरण मे मुद्रित पाठों के साथ मिलाने पर स्पष्ट पता चला कि अन्वेषक को अर्थ का कोई आभास नहीं मिला है, यों ही प्रतिलिपि कर दी गई है। पदच्छेद जैसे आवश्यक ही न हो। क्योंकि यह मुद्रण का दोष नहीं है। अशुद्ध पाठों से तथ्य तक सरलता से नहीं पहुँचा जा सकता और व्यर्थ ही नूतन निराधार कल्पना करने को विवश होना पड़ता है। अर्थाज्ञान से कभी कभी कर्ता के नाम का भी पता नहीं चल पाता उदाहरणार्थ चौदहवें विवरण की स० १७७ मे जिस गुरुप्रसाद का परिचय दिया गया है और पंद्रहवें विवरण की सं० २२३ में जिस यादवराय का नामोल्लेख किया गया है ये दोनों सूचन कितने हास्यास्पद हैं। जब कृतिकार ने अपना नाम स्पष्टतः दिया है तथापि क्लिष्ट कल्पना कर सत्य को धूमिल किया गया है। यह तो मै भी मानता हूँ कि ऐसा जानबूझकर नहीं किया गया पर संशोधक की स्वल्प स्खलना से साहित्यिक जगत् मे कितनी बड़ी भ्रामक परपरा फैल जाती है। अर्थानुसधान की कमी का ही यह परिणाम है। इसी के कारण कई सुविज्ञात और प्रणेता के नामवाली रचनाएँ भी अज्ञात कर्तृक कृतियों में सम्मिलित करनी पड़ी हैं। अठारहवाँ विवरण इन पंक्तियों का प्रमाण स्वतः उपस्थित कर रहा है। प्रसन्नता की बात है कि सपादक महोदय ने अज्ञात मानी जानेवाली कृतियों के आदि अत भाग तो दे दिए हैं, पर कतिपय विवरणों मे केवल सूची मात्र दी है, जिससे पता ही नहीं चलता कि वे रचनाएँ किसकी हैं।

४ – जैन कवियों के विषय मे कई प्रकार की भ्रांतियाँ हैं जिसका दोष मैं अन्वेषक को नहीं दूँगा। कारण, कि उनका इस साहित्य से सीमित सपर्क होने के कारण ही ऐसा हो जाना स्वाभाविक है। 'जैनगुर्जर कविओ' (स्व० मोहनलाल दलीचद देशाई कृत) भाग १, २, ३, जयपुर से प्रकाशित जैनप्रशस्तिसग्रह, राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रथसूची चार भाग, विद्यापीठ, उदयपुर से प्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथों का विवरण चार भाग, जैन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास, जैन साहित्य परिशीलन आदि कृतियों से सहायता ली जा सकती है। इनमे जैन कवियों की अधिकतर रचनाओं का उल्लेख मिल जाता है। अबतो कई नव्य शोधप्रबधों मे भी जैन रचनाओं का परिचय प्राप्त है। इन सब साधनों का उपयोग करने से संभव है सभावित भ्रांतियाँ न फैलें।

नागरीप्रचारिणी सभा और बिहार राष्ट्र - भाषा - परिषद् की ओर से जो विवरण प्रकाशित हैं, उनके प्रकाश में कभी कभी कोई हस्तलिखित ग्रथसग्रह देखता हूँ तो पता चलता है कि अभी आधा साहित्य भी प्रकाश में नहीं आया। अभी भी कई मूल्यवान् कृतियाँ ज्ञानागारों मे पड़ी हैं जिनका उल्लेख कहीं नहीं हुआ। ऐसी बहुत सी रचनाएँ उस प्रदेश से मिली हैं जहाँ सभा द्वारा खोज कार्य हो चुका है।

उदाहरणार्थ सूरदास का 'नलदमन' मुझे भरतपुर के एक जैन मंदिर से मिला था जो आगरा की हिंदी विद्यापीठ द्वारा श्री वासुदेवशरण जी अग्रवाल के संपादकत्व में प्रकाशित है। उसी प्रदेश के कई अज्ञात कवि आज भी शोध की प्रतीक्षा में हैं।

सभा अपनी सीमित शक्ति और साधन द्वारा तो खोजकार्य कर ही रही है पर सर्वत्र उसके द्वारा नियुक्त अन्वेषक का पहुँचना संभव नहीं। क्योंकि शताब्दियों से पोषित और विकसित साहित्यधारा सपूर्ण देश में फैली हुई है और न जाने कहाँ कब मूल्यवान् और अज्ञात साहित्यिक हस्तलिखित कृतियाँ उपलब्ध हो जायँ। अच्छा तो यह होगा कि प्रत्येक प्रांत के रुचिशील विद्वानों को खोज का कार्य सौंपा जाय जो अपनी जानकारी द्वारा प्राप्त नव्य साधन सामग्री से सभा को अवगत कराएँ। क्योंकि पैदल घूमकर इन पंक्तियों के लेखक ने अनुभव किया है कि आज भी राजस्थान आदि प्रदेशों में कई परिवार ऐसे हैं जिनके पास बहुमूल्य हस्तलिखित संग्रह विद्यमान हैं, पर अयोग्य सतान के कारण स्वल्प अर्थलाभ के पीछे या सिगड़ी में जलाने में ही इन कृतियों का उपयोग होता है। कभी कभी रद्दी के भाव मे ये कृतियाँ बिक जाती हैं। मैंने स्वय अपने सग्रह में ऐसी रचनाओं का पर्याप्त संग्रह किया है। इनमें यद्यपि ऐसी ज्ञात सामग्री है जिसका उल्लेख सभा के खोज विवरणों में हो चुका है पर फिर भी पाठभेद और प्राचीन ज्ञान कृतियों का महत्त्व किसी दृष्टि से कम नहीं। उदाहरणार्थ खोजविवरण १३ की सं० ३०६ मे मोहनदास कायस्थ के 'पवनविजय स्वरोदय' का विवरण दिया है, पर मुझे श्री ब्रजमोहन जावलिया द्वारा जो गुटका प्राप्त हुआ है उसमें कवि का पूर्ण विवरण विस्तार के साथ समाविष्ट है, जब कि खोजविवरण में जिस प्रति के आधार से सार भाग प्रकट किया है उसमें सूचित भाग नहीं है। अतः ज्ञात होते हुए भी इस प्रति का महत्त्व है। दूसरा उदाहरण नागरीदास का लें जिनका विवरण खोज वृत्तात १४, सं० २४१ में आया है पर उनका वास्तविक परिचय समाविष्ट नहीं है। जितना है उसे भी समझने का प्रयास न करने के कारण भ्रांति हो गई है। इसी विवरण मे एक जैन कवि झुनकलाल के साथ भी ऐसा ही हुआ है। दर्जनों उदाहरण और भी दिए जा सकते हैं।

अब हिंदी का प्राचीन साहित्य इतना प्रकाश मे आ गया है कि कभी कोई प्रति मिलती है तो आवश्यक साधन अनुपलब्ध होने की दशा मे पता ही नहीं चल पाता कि वह ज्ञात है या अज्ञात। अतः आफ्रेक्ट के 'कैटलोगस कैटलोगरम्' के समान हिंदी ग्रंथों की एक विस्तृत सूची प्रकाशित होनी चाहिए।[1]

1. 'कैटलोगस कैटलोगरम्' की तरह 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' तैयार हो रहा है। इसमें सभा द्वारा संचालित सन् १६००

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है तदनुसार आगामी पंक्तियों में १४, १५, १६ और १८ के विवरणों का परिमार्जन प्रस्तुत किया जा रहा है।

चौदहवाँ विवरण (१९२९-१९३१)

३६ भारामल्ल[2] — दर्शनकथा और मुक्तावलीकथा (रचनाकाल सं० १८३२) का विवरण दिया गया है। निवासस्थान का उल्लेख करते हुए सूचित

मे १९५५ तक की खोज मे उपलब्ध रचनाओं तथा रचयिताओं आदि का परिचय अकारादिक्रम मे संकलित रहेगा और जो तथ्य परवर्ती खोज में सामने आए है, उनके आधार पर पूर्ववर्ती तथ्यों तथा प्रमाणों मे यथासाध्य परिमार्जन परिवर्द्धन भी किया जायगा। यह 'संक्षिप्त विवरण' सन् १९६५ के मध्य तक तैयार हो सकेगा।—संपादक।

२. ३६ — भारामल्ल - सन् १९२९-३१ के खोजविवरण मे संख्या ३६ पर भारामल्ल को फर्रुखाबाद निवासी लिखने का आधार सन् १९२३ - २५ ई० का बारहवाँ खोजविवरण है। उस खोजविवरण के प्रथम खंड के पृष्ठ ३०१ पर 'हिंदी जैन साहित्य का इतिहास' (नाथूराम जी प्रेमी कृत) के पृष्ठ ८० का यह उद्धरण प्रकाशित है — 'यह फर्रुखाबाद के रहनेवाले सिंगई परशुराम के पुत्र थे और खरौआ जाति के थे ''।' अस्तु, सन् १९२३ - २५ के खोजविवरण सं० ४१ए की प्रस्तुत टिप्पणी के आधार पर सन् १९२९ - ३१ के खोजविवरण में भारामल्ल के फर्रुखाबाद निवासी होने का उल्लेख किया गया है और १९२३ - २५ के खोजविवरण मे उद्धरण अंश 'हिंदी जैन साहित्य का इतिहास' (नाथूराम प्रेमी) के पृष्ठ ८० मे लिया गया है। इसकी पुष्टि अप्रकाशित खोजविवरण संवत २०१० वि० की सं० ९७ क, ९७ ञ और ९७ ट पर उल्लिखित 'सप्तविसनपुराण की भाषा' के अंतिम अंश से भी होती है —

फरकाबाद नगर सुभथान॥ तहा हमारो वास सु जानि॥
फेरि भदावर देस मझारि॥ भैंड नगर बसे सुष धारि॥५१२॥
गोत षरौआ कुल सुभवानि॥ संघई परसराम सुत जानि॥
भारामल तुछबुधि करि भाय॥ कीनी कथा चौपही गाय॥५१३॥

लेखक ने कर्मपच्चीसी से उद्धरण देकर भारामल्ल के ग्वालियर राज्यांतर्गत, स्यौपुर निवासी होने का जो उल्लेख किया है, वह उपर्युक्त उद्धरण से भ्रामक सिद्ध हो जाता है। वस्तुतः कर्मपच्चीसी का उद्धरण स्पष्ट भी नहीं है।

— खोजविभाग, ना० प्र० स०।

किया है कि — 'ये फर्रुखाबाद के रहनेवाले थे'। पर इसका आधार अज्ञात है। कवि एक और रचना 'कर्मपचीसी' मे अपने को इन शब्दों में ग्वालियरराज्यांतर्गत 'स्योपुर' का बताता है–

प्रकृति पच्यासी जाणि के करमपच्चीसी जान।
सुदर भारेमल्ल······ ········स्योपुर जान॥

दर्शनकथा का सबध विवरणकार ने जैन तीर्थंकरों के दर्शनफल से स्थापित किया है जो समुचित नहीं है। दर्शन जैनों का पारिभाषिक शब्द है, तीर्थंकरों के सिद्धांतों के प्रति श्रद्धा से इसका तात्पर्य है। जैन सस्कृति मे दर्शन की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है — सम्यगदर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। दर्शन का सीधा अर्थ है यथार्थ दृष्टि, वस्तुतत्व को सत्य रूप में स्वीकार करना ही दर्शन है, तद्विपरीत मिथ्या है। दर्शन जैनदर्शन का मेरुदंड है। 'दर्शनकथा' मे कवि ने इसी का सूक्ष्म विवेचन किया है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित 'प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण' में इनकी 'शीलकथा' का विवरण दिया गया है, पर रचनाकाल सं० १६५३ दिया है जो ठीक नहीं है। मैं इस विषय पर स्वतंत्र निबंध में अन्यत्र प्रकाश डाल चुका हूँ।

कवि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं –

१. कर्मपच्चीसी, २. चारुदत्तचरित्र (रचनाकाल सं० १८१३), ३. सप्त व्यसन कथा, (रचनाकाल स० १८१४), (इसमें कवि ने अपना विस्तृत परिचय दिया है, पर इन पंक्तियों के लिखते समय प्रति उपस्थित नहीं है), ४. दानकथा, ५. शीलकथा, ६. निशि भोजनकथा, स्फुट पद, विनतियाँ आदि।

४१ भाऊ कवि – इनके नाम पर 'आदित्यकथा' का परिचय विवरण के पृष्ठ १५१ पर दिया है पर पूरी ग्रंथप्रशस्ति में कहीं भी प्रणेता के रूप में भाऊ का नाम नहीं आया है, आता भी कैसे? यह तो रचना ही भाऊ की न होकर भानुकीर्ति की है जैसा कि 'भानुकीर्त्ति मुनिवर यों कही' वाक्य से प्रमाणित है। इस पर मैं सभा द्वारा प्रकाशित पद्रहवें विवरण के समालोचन में विस्तार से लिख चुका हूँ।

भाऊ ने भी 'आदित्यकथा' लिखी अवश्य है जिसके आगे चलकर कई संस्करण हुए। विद्वत्परिचयार्थ भाऊ कृत कथा का भी विवरण यहाँ उपस्थित किया जा रहा है ताकि भविष्य में इस भ्रांति को दोहराना न पड़े —

कथा दीतवार की, भाऊ कृत

रिसह नाह प्रणमुं जिणंद जा प्रसन्न चित होय आनंद।
पणमुं अजित पणासे पाप दुष दालिद भव हरे संताप॥ १॥

अंत भाग –

दीन हीन ये रच्यो पुरांण ऊछी बुधि में कीयो बषांण।
दीन अधिक जो अक्षर होय बोहर समारो गुणीयर लोय।।५०॥
अग्रवालै कीयौ बषांन कुंअर जननि तिहुँ नग्री थांन।
गर्ग गोत मलुको पूत भाऊ कवि जन भगति संजुत्त ॥५१॥
करम ष्यौ पूर्ण मति भई तब हम धर्म कथा ठई।
मन धर भाव सुनो सब कोय सो नर सरग देवता होय।५२।

॥ इति रविवासर कथा संपूर्ण ॥

सं १७६६ वर्षे अश्वीन मासे शुक्लपक्षे ४ तिथौ सोमवासरै ॥ लिषतं आर्या धन्नाजी तस्य शिष्य आयो हठीली। सही सत्यं।

इस कथा का आदि और अंत भाग डा० कस्तूरचंदजी कासलीवाल ने अपने 'प्रशस्तिसंग्रह' में प्रकाशित किया है, पर अंत में कर्ता के नाम भाऊ के स्थान पर 'भयो' शब्द का मुद्रण हो जाने से इसे अज्ञात कर्तृक रचना मान लिया गया है। संशोधन अपेक्षित है।

भाऊ का समय अज्ञात है, किंतु इस कथा की सर्वाधिक प्राचीन प्रति सं० १७२० की मिल चुकी है अतः इतः पूर्व इनकी स्थिति तो सुनिश्चित ही है। इनकी माता का नाम कुँअर था और पिता का मलूक। अग्रवाल कुल के गर्ग गोत्रीय थे।

६१ बुधजनदास – प्रस्तुत विवरण में इनके 'देवानुरागशतक' का वृत्त दिया है। इतः पूर्व एक रचना 'योगीन्द्रसार' उपलब्ध होने की सूचना है। कवि की प्राप्त रचनाओं में रचनाकाल का संकेत अनुपलब्ध है।

जैनसमाज में बुधजनदास अपनी 'सतसई' के कारण अति विख्यात रहे हैं। ये भावुक प्रकृति के सज्जन थे। संयमशील होने के बावजूद भी कवि थे। इनकी रचनाओं से अस्तित्वकाल पर स्वतः प्रकाश पड़ जाता है –

१. ६१ बुधजनदास – इनका उल्लेख सन् १९२९-३१ के खोजविवरण में सं० ६१ पर है जिसमें इनका वर्तमानकाल सं० १८९४ माना है। इसके मानने का आधार योगींद्रसार पुस्तक है जिसका उल्लेख सन् १९०० के खोजविवरण में सं० ११८ पृष्ठ ८६ पर हुआ है। खोजविवरण संवत् २००४ की सं० २४० पर भी इनकी एक पुस्तक 'छैढालों' का उल्लेख हुआ है। इसका रचनाकाल सं० १८५९ है। अस्तु, इन प्रमाणों से ही बुधजनदास का अस्तित्वकाल माना गया है।　　— खोजविभाग।

१. षट्पाठ (रचनाकाल सं० १८५०), २. छहढाला, ३. बुधजन सतसई (र० का० स० १८७६), ४. बुधजन बिलास, ५. तत्वार्थबोध (सं० १८८६), ६. पचास्तिकाय (र० का० १८६२), ७. योगसार (र० का० १८६५), ८. सबोधपचाशिका, ६. मृत्युमहोत्सव[४], १०. भक्तामरस्तोत्रोत्पत्ति कथा, ११. चर्चाशतक, १२. बर्द्धमान पुराण, १३. सबोध अक्षर बावनी, १४. सरस्वतीकल्प ।

७४ दामोदर – इस नाम के कई कवि हुए हैं । एक तो 'यत्र चिंतामणि' के प्रणेता जो भट्टवशीय थे । दूसरे 'रसरत्नाकर' के अनुवादक । मेरे सग्रह में दामोदर नामक कवि के ५० से अधिक स्फुट कवित्त हैं । नहीं कहा जा सकता कि यह दामोदर कौन से हैं ।

६२ दीप कवि – इनकी कृति 'अनुभवप्रकाश' का विवरण दिया गया है। रचनाकाल और कवि के अस्तित्वसमय पर विवरणकार मौन है। इन पंक्तियों के लेखक के सग्रह मे दीप कवि कृत 'गुणकरड गुणावली चौपाई' की एक प्रति है जिसकी अत्यप्रशस्ति मे कवि ने अपने सबध मे इस प्रकार प्रकाश डाला है –

> **संवत सतरै सतावन बरसै दस दरावारै दिवसै जी ।**
> **सरस संबंध कह्यो मन सरसै सुणियां भविजन हरसै जी ॥**
> **गिरवो गच्छ गुजराती गाजै वसुधा पीठ बिराजै जी ।**
> **घरम गली जांणे घनराज इधकी जस अवाज जी ॥**
> **तस पाटै श्रीपूज्य चिंतामण दीपे जे हो दणोयर जी ।**
> **आचारज उदयंत पेमकरण दोलत ह्वै तस दरसण जी ॥**
> **साषा ताम तणी तिहां सुंदर, बड़ साषा जिम विस्तरी जी ।**
> **मोटा गुण आगर बहू मुनिवर, थिर चित नानिग थिवर जी ॥**
> **निरमल गुण भरीया बहू ग्यांन, मुनिवर श्रीप्रधमांन जी ।**
> **शिष तेहना 'दीप' सुझांनी जी घरै सदा गुण ध्यांन जी ॥**

+ + +

इति श्रीगुणकरंड गुणावली चौपाई समाप्त, सर्वगाथा ६०३ संवत् १७६६ विर्षे ज्येष्ट बदि ११ एकादशी तिथौ बुधवासरे लि० पूज ऋषि श्री ५ नरसिंहजी तत्शिष ऋ० श्री ५ मोहणजी तत्शिष ऋ० जगनाथ लि० ॥

धमाल आदि कई लघु कृतियाँ भी प्राप्त हैं ।

४. इसी नाम की एक कृति जयपुर के विद्वान् सदासुख जी की मेरे संग्रह मे (प्रणयन समय सं० १६१८ आषाढ़ शुक्ला ५) है । इसमें पूर्वाचार्य कृत श्लोकों का हिंदी भाषा में विवेचन है । तत्कालीन गद्य का यह अच्छा निदर्शन है ।

१२३ जनगोपाल – इनकी रचना 'प्रह्लादचरित्र' का विवरण दिया गया है। मेरे संग्रह की प्रति में कुछ पाठ विशेष है। ध्रुवचरित्र का भी विवरण पृष्ठ २८१ पर दिया है, पर मेरे संग्रहस्थ संवत् १७६२ के गुटके मे प्रतिलिपित ध्रुवचरित्र में पर्याप्त पाठभेद है। उसका आदि और अंत भाग दिया जा रहा है —

आदि –

श्री गणेशायनमः

ध्रुवचरित लिष्यते

गुर गोविंद प्रणाम करीजै मन बच क्रम चरण चित्त दीजै।
राम भक्ति को प्रारंभ होई गुपत बात समझाऊ सोई ॥ १ ॥
सतजुग त्रेता द्वापर गईयो पौंडो राज परीछत दीन्हो।
कलि प्रवेश प्रथमि परि कीन्हो ॥ २ ॥
राजा कही जुद्ध करि भाई ऊमें षड्ग क्यों म्यान समाई।
तिहां राजा पे डेरा मांग्यो ॥ ३ ॥

अंत –

ध्रुचरित्र कोउ सुने मन बच कनल उरै।
उदधि घोरी मिली कीजिये ध्रुव महिमा न माय ॥
मैं अजान मति आपनी कलपि कही कछु बात।
बकसौ सुत अपराध कौ जनगोपाल पितु मात ॥

इति श्री ध्रुवचरित्र समाप्तं

१३३ गुरुप्रसाद – इनका परिचय खोजविवरण म इस प्रकार दिया है – इनका बनाया 'कविविनोद' नामक ग्रंथ (रचनाकाल सं० १७४५—१६८८ ई० और लिपिकाल सं० १८२१) शोध म मिला है जो वैद्यक से संबंध रखता है। संभव है यह 'रत्नसागर' के रचयिता से भिन्न, जो सं० १७५५ - १६६८ ई० के लगभग वर्तमान था, अभिन्न हो। इसी विषय का दूसरा ग्रंथ 'वैद्यकसार संग्रह' और मिला है जो इन्हीं का रचा जान पड़ता है। — खोजविवरण, पृष्ठ ४७।

हस्तलिखित ग्रंथ - अन्वेषक का यह प्राथमिक कर्तव्य होना चाहिए कि वह ग्रंथ और ग्रंथकार के संबंध में जितनी भी महत्वपूर्ण और प्रमाणभूत सामग्री हो, रचयिता के शब्दों मे ही समुपस्थित करे ताकि उसके विषय मे भविष्य मे किसी भी प्रकार की भ्रांतियाँ न फैलें। यदि अपनी ओर से कुछ नई सूचनाएँ देनी हों तो सावधानी की आवश्यकता है। कवि की अन्यान्य रचनाओं का उपयोग किया जा सकता है। क्योंकि अनुसंधान के क्षेत्र में अल्प प्रमाद भी क्षम्य नहीं। सामान्य भूल भविष्य मे परंपरा का रूप ले सकती है, शोधार्थी भ्रमित हो जाते हैं। गुरुप्रसाद के विषय मे ऐसा ही हुआ है। 'कविविनोद' का जो विवरण दिया है और ग्रंथकार

के संबंध में जो भी लिखा है वह अपेक्षित सतर्क शोधवृत्ति का परिचायक नहीं है, इसके विपरीत जो तथ्य थे उन्हें तो नजर अंदाज कर दिया और व्यर्थ की नवीन उद्भावना कर डाली।

बात यह है कि 'कविविनोद' के भ्रष्ट विवरण में पृष्ठ २८६ पर पाँचवाँ पद्य इस प्रकार दिया है —

गुरुप्रसाद भाषा करी समुझि सकै सबु (सहु) कोइ।

इसका अर्थ यह लगाया गया कि गुरुप्रसाद नामक व्यक्ति ने भाषा की, जिससे सब लोग सरलता से समझ सकें। पर वहाँ अपेक्षित अर्थ यह था कि गुरु के प्रसाद-अनुग्रह-कृपा द्वारा इसकी भाषा की गई अर्थात् भाषा में रचना की। रचयिता के नाम की सूचना तो अंतिम लेखनपुष्पिका से ही मिल जाती है जो इसी विवरण के पृष्ठ २८६ पर इस प्रकार उद्धृत है –

इति श्री षरतरगच्छी वाचनाचार्यवर्यधुर्य श्री सुमतिमेरु शिष्य मुनि मानजी कृत कविविनोद नाम भाषा निदान चिकित्सा पथ्यापथ्य समान सप्तम खंड समाप्त ॥

इस विवरण में कई ग्रंथकारों के नामों का पता अंतिम पुष्पिकाओं से ही लग सका है। जब सर्वत्र यह नीति अपनाई गई तो पता नहीं कविविनोदकार के साथ यह भूल कैसे हो गई। थोड़ी देर के लिये अंतिम पुष्पिका को भी छोड़ दिया जाय, पर कवि ने तो आत्मवृत्त अपनी कृति में ही इतने विस्तार से दिया है कि शंका की गुंजाइश ही नहीं। संभव है अन्वेषक का ध्यान इन महत्वपूर्ण पद्यों की ओर नहीं गया –

भट्टारक जिनचंद गुरु सब गच्छ के सिरदार।
खतरगच्छ महिमा निलो सब जन कौ सुखकार ॥ ११ ॥
जाकौ गच्छवासी प्रगट वाचक सुमति सुमेर।
ताकौ शिष्य मुनि मानजी वासी बीकानेर ॥ १२ ॥
कीयौ ग्रंथ लाहौर मई उपजी बुद्धि की वृद्धि।
जो नर राखै कंठमइ सो होवै परसिद्ध ॥ १३ ॥

प्रथम खंड का अंतिम पद्य –

खरतरगच्छ मुनि मानजी कीयौ प्रगट इह ग्रंथ ॥२६५॥

इति श्री ख० मानजी विरच्वितेयां वैद्यक भाषा कविविनोद नाम प्रथम खंड समाप्तं ॥

द्वितीय खंड का अंतिम भाग –

खरतरगच्छ साखा प्रगट वाचक सुमति सुमेर।
ताको शिष्य मुनि मानजी कीनी भाषा फेर ॥२७८॥
संस्कृत शब्द न पढ़ि सकै अरु अच्छर से हीन।
ताके कारण सुगम प तातै भाषा कीन ॥२७६॥

इति श्री ख० मुनि मानजी विरचितेयां ज्वरनिदान, ज्वरचिकित्सा, सन्निपात तेरह निदान चिकित्सानाम द्वितीयखंड ॥

अन्वेषक ने रचना - संवत् - सूचक ६वाँ पद्य तो उद्धृत किया है, पर ठीक इसके आगे के पद्यों की न जाने क्यों उपेक्षा कर दी जब कि उनका विशिष्ट महत्व था।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'कविविनोद' का प्रणेता गुरुप्रसाद न होकर खरतरगच्छीय आचार्य श्रीजिनचंद्रसूरि जी के प्रशिष्य एवं सुमतिमेरु के शिष्य मुनि मान जी हैं जो मूलतः बीकानेरनिवासी थे और इन्होंने लाहौर में सं० १७४५ वैशाख शुक्ला ५ सोमवार को यह ग्रंथ बनाया।

आलोच्य चौदहवें विवरण के पृष्ठ ६७१ पर संख्या ५२३, ५२४ में 'वैद्यक-सारसंग्रह' का उल्लेख है। इसे भी मान की ही कृति मानने की कल्पना की गई है। यदि यह सत्य है तो इसे अज्ञात कर्तृक रचनाओं में रखने की आवश्यकता नहीं थी। एतद्विषयक स्वल्प स्पष्टता अपेक्षित है कि राजस्थान में इस प्रकार के वैद्यकसार-संग्रह - सूचक स्फुट परीक्षित प्रयोगों के अज्ञातकर्तृक कई संग्रह पाए जाते हैं। मेरे निजी संग्रह में ऐसे ६ संकलन विद्यमान हैं।

मान जी[१] आयुर्वेद के विशिष्ट अभ्यासी एवं अनुभवी चिकित्सक जान पड़ते

१. श्री अगरचंद जी नाहटा ने अपने 'राजस्थान में हिंदी के खोजविवरण' में इसी मान मुनि को 'संयोगद्वात्रिंशिका' का प्रणेता मानने की कोशिश की है। परंतु इन पंक्तियों के लेखक की विनम्र संमति में उनका मंतव्य उचित प्रतीत नहीं होता। उसकी भाषा, वैद्यविनोद की भाषा और शैली को देखते हुए तो इनकी रचना मालूम नहीं देती। इसके रचयिता तो राजविलास के प्रणेता, बिहारी सतसई के टीकाकार और विजयगच्छ के मुनि मान ही जान पड़ते हैं। ऐसी संयोगशृंगारमूलक रचना करना उन्हीं के बस की बात थी। भाषाविषयक जो प्रौढ़त्व संयोगद्वात्रिंशिका में है, वह आयुर्वेदविषयक रचनाओं में नहीं।

हैं। इनकी एक और रचना 'कविप्रमोद' पाई जाती है जिसका प्रणयन सं० १७४६ कार्तिक सुदि २ को हुआ था। इसकी प्रशस्ति से प्रतीत हुआ कि ये सुमतिमेरु के गुरुबंधु विनयमेरु के शिष्य थे। शिष्य चाहे किसी के भी हों, पर यहाँ तो यही अभिप्रेत है कि वैद्यविनोद के प्रणेता मुनि मान थे, न कि गुरुप्रसाद।

१६३. जगन्नाथ[६] – 'गुरुचरित्र' इनकी प्रसिद्ध रचना है। विवरण में इसका परिचय दिया गया है। मुझे इसके संबंध में केवल इतना ही निवेदन करना है कि मेरे संग्रह मे भी इसकी एक सुंदर आलेखनों से सुशोभित प्रति है जिसके अंतिम पाठ का विवरणवाली प्रति से साम्य नहीं। अतः उसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है –

संध्या प्रात दिवस मध्याना गुरुचरित्र को करै बषानां।
ग्यारसि बारसि मावसि पून्यौ पढ़ै पुन्यफल पावसि वून्यौ ।२३।।
अश्वमेध दस सहस कहावै वाजपेय सत कोटि पुजावै।
तीरथ सकल घूमि फिरि रहियै सो फल गुरुचरित्र पढ़ि लहियै ।।२४।।

इति श्रीमत्सुलसिदाससरवामी शिष्य जगन्नाथचंद्र विरचितं
श्रीमद्गुरु चरित्रं ॥

१६८ जनार्दन भट्ट – इनके द्वारा रचित 'वैद्यरत्न' का परिचय चार प्रतियों के आधार पर दिया गया है। किसी भी प्रति मे रचनाकाल नही है।

जनार्दन भट्ट का उल्लेख मिश्रबंधुविनोद के भाग २ पृष्ठ ५१६ और भाग ३ पृष्ठ १०७८ पर हुआ है। प्रथम मे इनका रचनाकाल सं० १७४५ माना है और द्वितीय उल्लेख में सं० १६०० है। इनसे अनजान को भ्रम हो जाता है कि संभवतः ये दोनों एक नामधारी व्यक्ति रहे होंगे। श्रीअगरचंद जी नाहटा तक को इसी भ्रामक उल्लेख के कारण दो जनार्दन की कल्पना करनी पड़ी जैसा कि 'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' भाग २ पृष्ठ १४६ से पता चलता है। वस्तुतः विनोदकार ही भ्रमित हो गए हैं। दूसरे भाग मे जो सं० १७४५ रचनाकाल दिया है वह ठीक ही था, क्योंकि वहाँ जिन कविरत्न, वैद्यरत्न, हाथी को सालिहोत्र आदि कृतियों का सूचन है वे सब सं० १७४५ वाले जनार्दन भट्ट की ही हैं। अतः दूसरे जनार्दन भट्ट की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है। इनके अन्य ग्रंथों से इनका समय स्वतः स्थिर हो जाता है।

मूलतः कवि संस्कृत के विद्वान् थे और तत्कालीन विद्वत्समाज में इनकी

६. एक जगन्नाथ कवि की कृति रामचरित्र भी मिलती है, पर वह इनसे भिन्न है। द्रष्टव्य, राजस्थान का अज्ञात साहित्यवैभव।

विशिष्ट प्रतिष्ठा थी। ये जयपुर के निवासी गोस्वामी जगन्निवास के पुत्र थे जैसा कि मेरे संग्रहस्थ इनके एक ग्रंथ 'मंत्रचंद्रिका' की अंतिम पुष्पिका से फलित होता है —

इति श्री गोस्वामी जगन्निवासात्मज गोस्वामी जनार्दन विरचितायां मंत्रचंद्रिकायां द्वादशः प्रकाशः समाप्तम् ॥

ये जयपुर के तैलंग भट्टों में थे।

जिस 'वैद्यरत्न' का परिचय खोजविवरण में दिया गया है वह मेरे नम्र मतानुसार तो मूल संस्कृत रचना का पद्यानुवाद मात्र है। मूल कृति मेरे संग्रह में सस्तबक विद्यमान है और उसमें इसका प्रणयनसमय सं० १७४६ माघ शुक्ला ६ दिया हुआ है। उत्तरवर्ती किसी कवि ने इसका हिंदी भाषा में अनुवाद कर दिया प्रतीत होता है। मुझे लगता है कि जैसे चौदहवें त्रैवार्षिक विवरण में (संख्या २५५, पृष्ठ ६७) अनुवादक के नाम के अभाव में नित्यनाथ को 'रसरत्नाकर' का प्रणेता मान लिया गया है। ठीक उसी प्रकार यहाँ भी जनार्दन भट्ट मूल संस्कृत के प्रणेता होने के कारण हिंदी अनुवाद के रचयिता मान लिए गए। इसका गद्यानुवाद भी प्राप्त होता है।

इनकी कविता में भी श्लाघ्य गति थी जैसा कि 'दुर्गासिंह शृंगार' (रचनाकाल सं० १७३५ ज्येष्ठ शुक्ला ८ रविवार) से विदित होता है।

सं० १८३४ के प्रतिलिपित एक हस्तलिखित गुटके में 'वैद्यरत्न' की एक प्रति श्री ब्रजमोहन जावलिया द्वारा मुझे देखने को मिली। खोजविवरणवाली प्रतियों से मिलान करने पर इसमें कुछ पाठ विशेष प्रतीत हुआ। मंगलाचरण का भाग यहाँ उद्धृत किया जा रहा है —

शुक्लांबरधरं विष्णुं सविवर्णं चतुर्भुजं ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ।

सच्चिदानंद गोविंदं नाम उच्चार भैषजं ।
नश्यन्ति सकला रोगा सत्यं सत्य वदाम्यहं ॥ २ ॥

विवरण में जो सन्निपातवाला भाग दिया है, वह भी इस प्रति से मेल नहीं खाता, कुछ भिन्नत्व है। इनकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं —

कविरत्न, कालविवेक, हाथी का शालिहोत्र, व्यवहारनिर्णय (रचनाकाल सं० १७३७) मंत्रचंद्रिका, सारोद्धार, ललितार्चा कौमुदी, लक्ष्मीनारायण पूजासार (बीकानेर नरेश अनूपसिंह के लिये प्रणीत) शृंगारशतक, वैराग्यशतक, महालक्ष्मी पूजा, कामप्रमोद आदि।

१७६ भुनकलाल[७] – विवरण के पृष्ठ ५४ पर उल्लेख है कि 'इनका विशेष परिचय नहीं मिलता'।

कवि ने स्वयं अपनी रचना में आत्मवृत्त दिया है। या तो अन्वेषक की दृष्टि नहीं पड़ी या उस प्रति में ही वह पाठ छूट गया हो जिसके आधार पर विवरण संकलित किया है। कवि की रचना का जो पाठ विवरण में प्रकाशित है वह इतना भ्रष्ट है कि उसमें से सार निकालना कठिन है। विवरणवाली प्रति में पद्यसंख्या २११ है जब कि मेरे संग्रह की प्रति मे केवल १२४ ही है। विवरणवाली प्रति में जो पाठ छूट गया है वह मेरी प्रति मे इस प्रकार अंकित है –

अंत भाग –

> अश्वतडाग नगर मैं श्रावक बसै सुजांन।
> देव धरम गुरु ग्रंथ कौ है जिनके सरधांन ॥११५॥

छंद

> कहै सरधांन सुजिन पहचांन सु मन मैं जांन यही मानै।
> देव धरम गुरु ग्रंथ मिली अरु दूजा देव नहीं जानै॥
> समकित की परतीत धरै मन और कुं किया नहीं ठानै।
> साधरमि जिन शासन बरती तिनसुं प्रीत अधिक मन आनै ॥११६॥

दोहा

> तिन मैं श्रावक सिघमन जिन मारग मैं लीन।
> पुत्र चार तिन कै भये साधरमी परबीन ॥११७॥

छंद

> प्रथम पुत्र कौ नाम रतन सम तातै कहिये माणकचंद।
> हरि उद्योत धरै अति उज्जल ऐसे गुन धारि हरचंद॥
> छैम सबद जग मैं परसिद्ध यह तातै नाम कुशल ही चंद।
> सरा नाम सुष ही कौ जांनौ भयौ परमसुष चौथो मंद ॥११८॥

७. १७६ भुनकलाल – इनके विषय में यद्यपि खोजविवरण से विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता पर सामान्य परिचय अवश्य प्राप्त है जिसका समावेश सन् १९०० - ५५ के संक्षिप्त विवरण में हुआ है। उक्त परिचय के अनुसार ये जैन थे। शिकोहाबाद (मैनपुरी) के निवासी थे और संवत् १८४१ के लगभग वर्तमान थे। — खोजविभाग।

दोहा

हेमचंद्र के नंदवर नाम सबद अनुसार ।
अलप मति बहु तुछ बुधि, कीनौं यह बिस्तार ॥११९॥

छंद

करम जोग इक कारण कारन आए नगर शकूहाबाद ।
तह श्रावकि श्रावक पुनीत बहु तिनकै नेम धरम मरजाद ॥
तहां कारन सुभ सफल करिकै भयौ नहीं तह हरष विषाद ।
श्रावग सेवादास तनुज वर तिनसौं मिल पायौ अहलाद ॥१२०॥

दोहा

भई मित्रता मिलत ही, मन मैं हरष बढाय ।
लघु नंदन नाम अब, जांनौं अति सुषदाय ॥१२१॥

छंद

तिन ऐसो उपदेश दियौ हमें कोई बतायौ मंगलमाल ।
तिनकौ मन उपदेश दियौ तिनके हेत रच्यौ यह ख्याल ॥
कृष्णपक्ष अंतिम दिन जांनौ सोमवार मिगसर सुविशाल ।
तीन चार वसु चंद्र आंक संवत स करकै सब जांनौं हाल ॥१२२॥

छंद

कवि करि बीनती महा दीनती सुनौं विचष्यन सो परवीन ।
लघु दीरघ कछु अनजांनत ऐसा है मो हिय मति हीन ॥
मो बुधि अयानी सयानी तातै अरज सुय हमें कीन ।
तिने की गुनधारी को नहीं पार उतारो कहा लग बलहीन ॥१२४॥

॥ इति श्री नेमजी रो व्यावलो संपूर्ण ॥

२११ लल्लुभाई – इनका निवासस्थान भृगुपुर — भडौंच बताते हुए भडौंच की अवस्थिति ग्वालियरराज्यांतर्गत बताई है जो विचारणीय है। सूचित भूभाग मे इस नाम का नगर सुना नहीं गया। भृगुपुर – भडौंच नर्मदा के तीर पर बसा है और शताब्दियों से आंतर्राष्ट्रिय ख्याति का केंद्र रहा है। प्राचीन प्राकृत भाषा की चूर्णियों में तथा चीनी यात्रियों के वर्णनों एव बौद्ध साहित्य के दिव्यावदान आदि प्रामाणिक ग्रंथों मे इसका विशाल उल्लेख मिलता है। एक समय वह लाट — दक्षिण गुजरात की राजधानी के सौभाग्य से मंडित था। लल्लुभाई नाम भी गुजराती है।

२५७ **नागरीदास**[८] – इनका परिचय इन शब्दों मे दिया गया है — इनका बनाया 'भागवत दशम स्कध' का पद्यानुवाद मिला है जिसके विवरण लिए गए हैं। इसकी एक अपूर्ण प्रति पहले खोज में आ चुकी है, देखिए खोजविवरणिका (१९१७–१९, सं० ११८), विशेष विवरण के लिये देखिए विवरणिका (१९२६–१९२८, सं० ३१३)। —खोजविवरण, पृष्ठ ६४।

उपर्युक्त उद्धरण से प्रतीत होता है कि समान नाम, समान समय और समान कृति के कारण ही टिप्पणीकार ने खोजविवरण सन् १९२६–२८ और सन् १९२९–३१ वाले नागरीदास को एक मान लिया है, जो स्पष्टतः भ्रामक है। यदि खोजविवरणों मे दिए गए कविपरिचयों पर थोड़ा सा भी ध्यान केंद्रित किया जाता तो सन् १९२९–३१ वाले नागरीदास के लिये सन् १९२६–२८ के विवरण देखने की सलाह देने की आवश्यकता न पड़ती। भ्रम का स्वतः निराकरण हो जाता।

आलोच्य नागरीदास ने आत्मवृत्त बहुत ही स्पष्ट रूप से कृति के अंत में दे दिया है जिससे विदित होता है कि जोरावरसिंह के पौत्र और महब्बतसिंह के पुत्र महाराज प्रतापसिंह के दीवान साहजी हल्दिया गोत्रीय छाजूराम के लिये इस कृति का सृजन किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि विवरणकार का ध्यान चौदहवें विवरण की अंत्यप्रशस्ति पर नहीं गया है। इस नागरीदास का परिचय देने के पूर्व सन् १९२६–२८ वाले कवि पर थोड़ा विचार कर लें।

अब प्रश्न रह जाता है खोजविवरण सन् १९२६–२८ वाले नागरीदास का। जैसा कि टिप्पणीकार ने सूचित किया है कि 'मेरे विचार से काव्यक्षेत्र में (किशनगढ़वाले, वृंदावनवासी) महाराज नागरीदास सर्वोत्कृष्ट थे और यह ग्रंथ (रासपञ्चाध्यायी) उन्हीं का रचा है। इन्होंने प्रचुर परिमाण मे रचना की है। मिश्रबंधुओं ने इनके रचे ७७ ग्रंथों का उल्लेख किया है, किंतु उनमें 'रास-

८. २५७ नागरीदास – हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों के 'संक्षिप्त विवरण' में इनका परिचय इस प्रकार है – 'रावराजा प्रतापसिंह के दीवान शाह छाजूराम के आश्रित। १९वीं शताब्दी के आरंभ में वर्तमान। यह परिचय १९१७ के खोजविवरण सं० ११८ पृष्ठ ४९ से दिया गया है। विशेष विवरण देखने के लिये खोजविवरण १९२६ - २८ की सं० ३१३ का संकेत वस्तुतः भ्रामक है। पर संभवतः यह केवल नामसाम्य के कारण कर दिया गया है क्योंकि टिप्पणीकार को १९१७ - १९ के खोजविवरण सं० ११८ पर पहले ही सही सही परिचय मिल चुका था जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। — खोजविभाग।

पंचाध्यायी' का नाम नहीं है। वह सूची निश्चित रूप से अपूर्ण है। अतः नामाभाव सामान्य बात है। रचना, शैली और उपनाम नागर्य या नागरीदास जो हम लोगों से परिचित हो गए हैं और जिनका प्रयोग इस रचना में हुआ है—इन्हीं के रचनाकार होने का समर्थन करते हैं'। —खोजविवरण सन् १९२६–२८, पृष्ठ ६७।

इन पक्तियों का लेखक उपर्युक्त अभिमत से पूर्णतया सहमत है। महाराजा नागरीदास ने अपनी अन्य रचनाओं में 'नागरिया' नाम से अपने को संबोधित किया है। अब यह तो सिद्ध हो ही गया कि १४वें विवरणवाले कवि और १३वें विवरणवाले कवि एक ही विषय पर लिखनेवाले दो भिन्न व्यक्ति हैं।

आलोच्य नागरीदास का विशिष्ट परिचय इस प्रकार है — प्रस्तुत नागरीदास ने स्पष्टतः आत्मसंप्रदाय सूचित नहीं किया है, परंतु कवि ने भागवत के अनुवाद के मंगलाचरण में तथा अन्य कई स्थानों पर शुकदेव जी एवं चरणदास जी को बड़े आदर एवं श्रद्धा के साथ स्मरण किया है। चरणदास के ५२ सुप्रसिद्ध शिष्यों में कवि नागरीदास का नाम संमिलित है। इसी से पता लगता है कि कवि चरणदासी संप्रदाय का अनुयायी था। यद्यपि इनके जीवन पर प्रकाश डालनेवाले प्रमाणभूत साधन अनुपलब्ध हैं तथापि इनकी काव्यसाधना से फलित होता है कि ये उच्चकोटि के साधक और समन्वयवादी व्यक्ति थे। इनके विशद् पांडित्य का सूक्ष्म परिज्ञान भागवत के अनुवाद में परिलक्षित होता है। 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' सिद्धांत कवि के जीवन में साकार है। 'रासपंचाध्यायी' ही नहीं कवि ने तो पूरे भागवत का विस्तृत पद्यानुवाद ही उपस्थित किया है। जैसा कि ऊपर सूचित किया जा चुका है कि यह अनुवाद नरुखंडाधिपति जोरावरसिंह के पौत्र और मुहब्बतसिंह के पुत्र महाराज प्रतापसिंह के दीवानसाह छाजूराम हल्दिया के लिये किया गया है। प्रत्येक अध्याय के अंत में अपने आश्रयदाता का नाम स्मरण किया है। कवि को इनके द्वारा पर्याप्त भेंट मिली थी। विद्वत्परिचयार्थ भागवतानुवाद का आदि और अंत भाग यहाँ उद्धृत किया जा रहा है —

आदि भाग —

दोहा

श्रीशुक चरननदास के, बैठि चरण की नाव।
रे मन अलि भज पार हो, भलौ बण्यौ है दाव॥ १॥
अलि कुल मंडित गंड जुत, सुंडा डंड उदंड।
मंडन शुभ षंडन अशुभ, जय वे तंड प्रचंड॥ २॥
नरुखंड मंडित विदित, राजा राव प्रताप।
सूरवीर दाता भरणि, देस-देस जिहि छाप॥ ३॥

कवित्त

सुरन समान सैना चढ़ति सु जाकै संग,
वज्र सम जाके कर षग्ग सु बषांनियें।
राजगढ़ राजत समान सुरपुर जाकैं,
छाजूराम कलपतरोवर प्रमांनियें॥
विजय नगारे को बजन घनघोर जोर,
ऐरावत तुल्य गजराज घर जांनियें।
इंद्र सम प्रगट नरेंद्र महाराज राव,
भूपति प्रतापसिंह जाके गुन गानियें॥ ५॥

दोहा

तिहिं प्रतिनिधि दीवान जो साह जु छाजूराम।
गोत हलदिया तास वर सकल सुषनि कौ धांम॥ ६॥
विप्र नागरीदास सौं तिन कीनौं अति प्रीति।
हय गय वसु वहु भेंट दै सुनैं पुरान सु प्रीति॥ ७॥
तिन इक दिन ऐसैं कही धरि हिय में अलि नेहु।
भाषा श्रीभागवत की तुम हमकौं करि देहु॥ ८॥
कीनौं प्रथम स्कंध मैं तब सु चौपई रीति।
नृप ताकौं नैननि निरषि यौं निदेस मुष गीत॥ ६॥
लगै बांचिवे मैं सुभग छंद रीति जो होय।
तब पनज बुधि अनुसार करि रच्यो जु मैंने सोइ॥१०॥

त्रयोदश अध्याय के अंत में —

श्रीसुक चरननदास के चरन सरोज मनाय।
आसय श्री भागवत में भाषा कीयौ गाय॥१६॥
जब लग घर अंबर अटल तब लगि चिर जुत बंस।
राजा राव प्रताप भुव राज करो प्रभु अंस॥२०॥
राजा राव प्रताप को छाजूराम दिवान।
संतति संपति जुत सु नित होउ तेज सम भांन॥२१॥

इति श्रीभागवते पुराने द्वादस स्कंधे राव राजा श्रीप्रतापसिंहस्य तुरसीराम श्री कंवरजी श्री कृष्णवल्लभजी चिरंजीव। सं० १८५८ मिती ज्येष्ठ सुदि २ श्रीरामजी॥ बैरिगढ़ मध्ये पठनार्थ॥

उपर्युक्त पंक्तियों में केवल भागवत के प्रथम स्कंध का ही भाग है। अन्य भाग भी इसी प्रकार की सूचना देते हैं।

इसकी समाप्ति की प्रशस्ति विशिष्ट सूचना देती है जो इस प्रकार है —

दशम स्कंध का अंतिम भाग

कुरम कल मधि प्रगट नृपति जोरावरसिंह वर।
अंबरीष ज्यौं भक्ति दीन जिनमें करुणाकर।
भये मुहब्बतसिंह पुत्र तिनकै सु महारथ।
राजा राव प्रतापसिंह तिनि सुत सम पारथ।
अरि प्रबल निबल कीनैं जु निसि निज भुजदंड प्रताप करि।
भनि नागर अटल सुरेश ज्यौं रहौ सदा सिर छत्र धरि ॥३४।

दोहा

साह फकीर जु दास के बालकृष्ण सुत ग्रांन।
तिनके छाजूराम जू हरि जन मांझ प्रधांन ॥३५॥

छप्पय

छाजूराम दिवान राव राजौ के प्रतिनिधि।
दई कृपा करि ताहि भक्त लखि ईस सकल सिधि।
दाता करन समांन सूर जाहर जग गायौ।
गो दानन के काज मनौं मृग फिरि घर आयौ।
तिनि बहु पुरान मा सौं सुने असन बसन बहु भेंट दिय।
तिहिं हेत सुनौ भागवत मैं छंद रीति भाषा करिय ॥३६॥

दोहा

छंद अनुक्रम तैं तहां जो कछु अधिकी होय।
कथा अरथ मैंने कियौ कवि कुल सोधौ सोय ॥३७॥

इति श्रीभागवते महापुराने दशमस्कंधे भाषा राव राजा श्रीप्रतापसिंह दीवान छाजूरामार्थं नागरीदासेन कृतं कृष्णलीला चरितानुवर्णनं नाम नवमो अध्याय ६० ॥

पूरा भागवतानुवाद कब समाप्त हुआ यह कहना निश्चित रूप से तो कठिन है पर इतना सुनिश्चित है कि सं० १८४५ के पूर्व ही समाप्त हो गया होगा। कारण कि इसी संवत् में साह छाजूरामजी का स्वर्गवास हुआ। इसका प्रारंभ कवि ने सं० १८३२ वैशाख सुदि ३ को किया था, जब स्वामी चरणदास जी जीवित थे।

२५३. निपट निरंजन[1] – इनका परिचय खोजविवरण में इस प्रकार दिया है – इनका बनाया वेदांतविषयक बिना नाम का तथा आद्यत से खडित ग्रंथ मिला है। इसकी प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल का कोई उल्लेख नहीं मिलता। 'शातसरसी' नामक रचना के साथ रचयिता का उल्लेख पिछली खोजविवरणिका (१९२३ - २५ - स० ३०६) मे हो चुका है। सभव है प्रस्तुत ग्रथ भी वही हो। — खोजविवरण, पृष्ठ ६६।

निपट जी से संबद्ध जिस विवरण की ऊपर चर्चा है वह मेरे अवलोकन में नहीं आया। इसमें कोई सदेह नहीं कि ये बहुत बड़े मार्मिक और आध्यात्मिक प्रकृति के कवि थे। इनकी भाषा मे ओज और प्रवाह के साथ अनुप्रासबाहुल्य है। अभिव्यक्ति का अपना ढग ही निराला है। इनकी कोई स्वतत्र कृति अद्यावधि मेरे देखने में नहीं आई। हाँ, कवित्त सग्रहों और हजारों मे इनके छप्पय या कवित्त प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। मेरे सग्रह मे इनके २५० से ऊपर स्फुट छद विद्यमान हैं। ये कोरे वेदाती ही नहीं परम व्यावहारिक भी जान पड़ते हैं। इन्होंने कवित्त, कुडलिया, रेखता, झूलना और दोहों म न केवल आध्यात्मिक भाव ही भरे हैं अपितु तत्कालीन समाज और साधुओं के नाम पर उदरपूर्ति करनेवालों की कटु आलोचना भी की है। ये थे तो हिंदी के कवि पर गुजराती भाषा पर भी इनका उतना ही अधिकार था जैसा कि आगे के उद्धृत पद्यों से पता लगेगा। मेरे संग्रह में एक ४३ पत्रों का गुटका है जिसमें निपट जी के ही कवित्तों का संकलन है। अंतिम पत्र तो इसमें भी खडित ही है। गुटके का आदि भाग इस प्रकार है —

श्रीगणेशाय नमः

अथ निपटजी के कवित्त लिख्यते

दोहरा

ज्ञान भक्ति वैराग्य मत कहे जु बाक कवित्त।
पढ़ै सुनै जामैं लहै निपट निरंजन नित्त ॥ १ ॥

१. २५३ निपट निरंजन – इनका उल्लेख खोजविवरणों में तीन बार हुआ है– १९१७ - १९ स० १२८ पृष्ठ ५१ पर, १९२३ - २५ सं० ३०६ पृष्ठ १०७ पर और १९२९ - ३१ के खोजविवरण सं० २५३ पृष्ठ ६९ पर। १९१७ - १९ के खोजविवरण के आधार पर इनका जन्म संवत् १५९५ में हुआ था और ये अकबर के समकालीन थे। इसका आधार श्री ग्रियर्सन कृत 'दी माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान' की

उकति जुकति जामैं सबि तवित चित लही न जाय।
एक कवित परकरन है सब विधि रही समाय ॥ २ ॥
निपट निरंजन समय पर कहै जु वचन विलास।
ते सबमें अनुक्रम करि लिखें नाम धरि तास ॥ ३ ॥

इन दोहों के बाद कवित्त प्रारंभ हो जाते हैं। सब मिलाकर इस गुटके में २०८ कवित्त सकलित हैं। शेष कवित्त अन्य सग्रहों मे हैं। कवि की गुजराती भाषा की कई रचनाओं मे से एक उदाहरणार्थ उद्धृत है –

पहाँ तत्वथी पवडा नोपना पन्हा नत्वना तत्व ते सो जांणी।
मल्या सरषे सरषा लष चौरासी सुन्य ये व्यापक वेद् वांणी ॥
प तौ सर्व्व निपट्ट निरंजना थी ढाँकि बात हुती ते तो औलषांणी।
मूल्य सुन्य आकास तिहाँ सूँ मिले माहि धूल धाणी ने वन पाणी ॥११३॥

एक हिंदी कविता भी देखिए। कवि अपनी बात कितनी सरलता से कह जाता है —

आन अनंत न मोह विनंत सु दंत कथा सु कथंत ही हारा।
कौन गिनंत बनैं अगनंत सु दंत अपंथ कौ पार न पारा ॥
संत सदा मुसकंत रहंत असन्त बसंत तने पतझारा।
तंत मंत तजै निपटा भगवंत भजै सोई संत मित हमारा ॥१८४॥

इनके कवित्तों की यह विशेषता है कि पढ़ते समय मन भ्रमित हो जाता है कि किसे उद्धृत करें और किसे छोड़ें।

जैसा कि ऊपर के एक दोहे में कहा गया है कि एक एक कवित्त एक प्रकरण समान गभीर भावों से परिपूर्ण हैं। वास्तव मे यह उक्ति अतिरजना से रहित है। दीर्घकालव्यापी साधना द्वारा ही ऐसी स्वाभाविक अभिव्यक्ति सभव है। मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय की प्रधानता कितने अश तक इन पद्यों मे है, अनुभव का विषय है।

कवि के समय पर प्रकाश पड़ सके, ऐसे अकाट्य प्रमाण अनुपलब्ध हैं। परतु जिस गुटके मे इनकी कविता प्रतिलिपित है, उसका आनुमानिक प्रतिलिपिकाल १८वीं शती के बाद का नहीं हो सकता। अतः निपट जी अठारहवीं सदी या इससे पूर्व के कवि ठहरते हैं।

संख्या १२१ है। पर श्री किशोरीलाल गुप्त ने इसका खंडन कर यह सिद्ध किया है कि 'निपट निरंजन' औरंगजेब के शासनकाल १७१४ - ६४ वि० में हुए थे। – 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास,' संख्या १२१, पृष्ठ १३४।

श्री डा० विनयमोहन शर्मा ने अपनी रचना 'हिंदी को मराठी संतों की देन' की भूमिका में निरंजन सञ्ज्ञक सात संतों की सूचना दी है। उनमें एक निपट निरंजन भी हैं। आपने लिखा है – 'सातवें निरंजन अपनी हिंदीवाणियों में सदा निपट निरंजन की छाप लगाते हैं। इनके जन्म-समाधि - काल - स्थान आदि के विषय से कुछ ज्ञात नहीं है। एक निरंजन रामदास के शिष्य भी हो गए हैं। हो सकता है, ये वही निरंजन हों, क्योंकि रामनाम के माहात्म्य का एक पद में प्रचुर गान है। यथा –

न पढ़ो ओनामासी न पढ़ो क ख ग पढ़ो जो वेदन को सार है।
रामनाम ज्यानो तब ही कछु पछ्यानो भले से भलाई ना बुरे सो बीगार है॥
निपट निरंजन नीके के न्याहार देख बात परमारथ की जो बातन की सार है।
वेद पाट, पोथी पाट पै समझ के पाट एक रामनाम अपार है॥

मेरे संग्रहस्थ उपर्युक्त गुटके में यही पद किंचित् परिवर्तन के साथ प्रतिलिपित है जो इस प्रकार है —

न पढ्यौ ओनामासीधं क ष ग घ ङ,
बारह अक्षर गिनत जोर कौं विचार है।
दीरघ रहसि अमर और व्याकरन पिंगल रु
ज्यौतिष निरघंट निरधार है॥
निपट निरंजन बशिष्ठ गीता भागवत,
अध्यात्म मत शास्त्र पुरानन कौ सार है।
वेद पार पोथी पार कवित समस्या पार,
समझैं अपार एक अक्षर अपार है॥
एक पद द्विपद त्रिपद च्यार पद
कोऊ पढ़त दस बीस कोऊ पढ़त हजार है।
कोऊ पढ़त लक्ष कोऊ कोटि कोऊ अरब
षरब पद्म नील प तौ व्रषभ कौ सौ भार है॥
निपट निरंजन नकार नीकैं जान्यौं नाहि
ओंकार कौ अरथ पतौ उरधार है।
वेद पार पोथी पार कवित्त समस्या पार,
समझै अपार एक अक्षर अपार है॥१०७॥

इन्हीं भावों को व्यक्त करनेवाले और भी पद्य हैं। सूचित गुटके में कवि द्वारा राम नाम की महिमा पर दो एक पद्य को छोड़कर अधिक कुछ नहीं है। हाँ, कृष्णभक्ति और उनके जीवन की लीलाओं पर कवि ने अपनी अनुभूति विस्तार

से व्यक्त की है। पर इससे इन्हे कृष्णभक्त सूचित करने में सकोच ही होता है। कारण, ५० से ऊपर ऐसे छंद हैं जिनमे इनका निर्गुणत्व परिलक्षित होता है। इनका परमात्मा बहुत ही व्यापक है। वह किसी से बँधना नहीं चाहता। निपट जी वर्णाश्रम के विरोधी हैं।

जैसा कि डा० विनयमोहन जी शर्मा ने सूचित किया है कि यह रामदास के शिष्य रहे होंगे और इनका सबध महाराष्ट्र से रहा होगा। पर मेरी विनम्र समति मे यह उत्तरप्रदेशीय ही जान पड़ते हैं। कारण, पद्यों मे कहीं कहीं जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है वे सबके सब लगभग उत्तरभारतीय हैं। खेल कूद के भी सभी शब्द हिंदी के ही प्रतीत होते हैं। इन्हें मराठी का संत कवि मानना युक्तिसगत प्रतीत नहीं होता। डा० शर्मा जी ने अपनी भूमिका मे यह स्पष्ट अवश्य कर दिया है कि 'निपट निरंजन ने उत्तर भारत की पर्याप्त यात्रा की है'। यह मानना आवश्यक नहीं कि इसी लिये इनकी भाषा मे स्वच्छता का समावेश हो सका है।

२५४ निश्चलदास — ये दादूपंथी साधु थे। इनका अस्तित्व स० १८८५ – १९१५ तक का रहा है जैसा कि 'दादू महाविद्यालय रजत जयती ग्रथ', पृष्ठ ४७ से विदित होता है।

२५६ पदम भगत – इनके अत्यत लोकप्रसिद्ध काव्य रुक्मिणीमंगल या व्याहलो का विवरण दिया है। इनके समय के संबंध म समस्या थी और अब भी बनी हुई है। पर इतना तो निश्चित हो चुका है कि स० १६६६ के पूर्व के ये कवि हैं। कारण, इस सवत् की प्रति श्री नाहटा जी को प्राप्त हो चुकी है और 'वरदा' के वर्ष ३ अक २ में मुद्रित हो गई है।

लोक - काव्य - साहित्य जनकठ का हार होता है। अतः इसके गानेवाले मनमाने ढग से परिवर्तन परिवर्द्धन करते ही रहते है। इसके साथ भी ऐसा ही हुआ है। इसके दो सस्करण इन पक्तियों के लेखक के सग्रह मे भी हैं। प्रथम प्रति के अत म इस प्रकार लेखनपुष्पिका है —

इति श्री पदम भक्त कृत श्रीकृष्णजी को रुक्मिणीजी को व्याहुलो संपूर्ण ॥

संवत् १८८६ वर्षे मिती वैशाष मासे सुभ शुक्ल पक्षे अष्टम्यां शनिवासरे लिषतं महात्मा अमरचंद नेवटा नगर मध्ये लिषापितं शाजि श्री परतापस्यंघजी तस्यपुत्री बाईजी श्रीफतेकँवरीजी आत्मार्थे पठनार्थे। किल्याणमस्तु। पत्र ३९ गुटकाकार।

दूसरी प्रति भी गुटकाकार ही है वह इतनी अर्वाचीन है कि उसके उल्लेख की आवश्यकता नहीं रह जाती।

पाठभेद दोनों में बहुत अधिक हैं। समान पाठवाली प्रतियाँ कमही मिलती हैं।

विवरण में बताया गया है कि कोई उन्हे जैन धर्म का अनुयायी भी बताता है, यह सत्य नही है। ये किस जाति के थे, पुष्ट प्रमाण न मिले तबतक निश्चित रूप से क्या कहा जाय।

२५५ नित्यनाथ पार्वतीपुत्र – इनके द्वारा रचित 'महासावर', 'वीरभद्र', 'उड्डीसग्रंथ' और 'रसरत्नाकर' का परिचय दिया गया है। टिप्पणीकार ने सूचित किया है—रचयिता वास्तव मे संस्कृत के रचयिता हैं। हिंदी में उनकी रचनाएँ केवल अनुवाद मात्र हैं। परंतु इन हिंदी रचनाओं मे अनुवादक का नाम न रहने के कारण इन्हीं को रचयिता मान लिया गया है। — खोजविवरण, पृष्ठ ६७।

'महासावर' एक स्वतंत्र तात्रिक रचना है और इसका नाम तंत्रों मे समाविष्ट है। समझ मे कम ही आता है कि इसका नाम नित्यनाथ के साथ कैसे जुड़ गया? उपर्युक्त उद्धरण म कहा गया है कि अनुवादक का नाम नहीं मिलता, पर विवरण के पृष्ठ ४७२ पर दामोदर पडित का नाम आया है। दामोदर नामक कई विद्वान् हुए हैं। नहीं कहा जा सकता कि यह दामोदर कौन से थे। एक दामोदर तांत्रिक हुए हैं जिनकी 'मत्रावली' मेरे संग्रह मे सुरक्षित है। शृंगारमाला नामक सस्कृत साहित्यिक कृति के लेखक सुखलाल मिश्र के पूर्वज भी यही नामधारी सज्जन हुए हैं जो तात्रिक एवं आयुर्वेदवेत्ता थे। इनमे से 'महासावर' वाले कौन थे, कहना कठिन है।

तत्रशास्त्रों मे वीरभद्र एक ऐसा व्यक्तित्व है कि जो सभी तंत्रों मे विराजमान है। पर यह वीरभद्र वही जान पड़ते हैं जिनका उल्लेख महाभारत के शातिपर्व मे आता है। वीरभद्र तंत्र अलग रचना भी है पर उसमें नित्यनाथ का नाम नहीं आता है।

अष्टांग आयुर्वेद मे रसायनखंड सर्वोपरि माना गया है। दीर्घजीवन की कामना ही आयुर्वेद का उद्देश्य है और इसकी पूर्ति तभी संभव है जब सप्तधातुएँ अपना काम ठीक से करती हुई परिपुष्ट बनी रहें। धातुओं की पुष्टि रसायन के समुचित प्रयोग पर अवलंबित है। स्वास्थ्य के लिये रसायन अव्यर्थ महौषधि है। यद्यपि इस विषय के पर्याप्त ग्रंथ पाए जाते है, उनमें नित्यनाथ का स्थान भी उल्लेखनीय है। रसरत्नाकर का व्यापक प्रचार कई शताब्दियों से रहा है और जनस्वास्थ्य के विकास में इसका अनुपम योग रहा है।

इस कृति के तीन खंडों का सबध रसशास्त्र से है। शेष मंत्र और तत्रों से भरे हैं। सुप्रसिद्ध रसायनविद् डा० प्रफुल्लचंद राय इसे सप्तम अष्टम शती की रचना

मानते हैं जब कि स्व० दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री ११वीं सदी की कृति स्वीकार[10] करते हैं। श्री अत्रिदेव जी गुप्त १४वीं सदी इसका रचनाकाल बताते हैं।[11] श्रीगुप्त जी का मत इसलिये समुचित प्रतीत नहीं होता कि सं० १४१५ की प्रतिलिपित प्रति की प्रति तो मेरे ही संग्रह में है। गोंडल निवासी सुप्रसिद्ध आयुर्वेदविशेषज्ञ जीवराज कालिदास शास्त्री (अब भुवनेश्वरी पीठ के अधिकारी स्वामी चरणतीर्थ महाराज) रसेंद्रमंगल और रसरत्नाकर को एक ही कृति मानते हैं। रचनाकाल जो भी हो, मैं इसमें यहाँ उलझना नहीं चाहता, पर इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि इस कृति का प्राचीनकाल में इतना आदरणीय स्थान रहा है कि रसरत्नसमुच्चय जैसे ग्रंथों में इसका उल्लेख हुआ है और समय समय पर कई विद्वानों ने इसका अनुवाद कर लोकभोग्य बनाने का प्रयास किया है। विवरण में जो भाग रसरत्नाकर का दिया गया है वह अपूर्ण परिवर्द्धित अंग है। मूल प्रति में इसका मेल नहीं बैठता। पृष्ठ ४७३ से पता चलता है कि इसके व्याख्याता बुद्धि गुसाई हैं। चक्रपाणि वागीश का नाम वहाँ आया है। संभवतः यह सुप्रसिद्ध टीकाकार ही प्रतीत होते हैं। विशेष के लिये देखें 'राजस्थान का अज्ञात आयुर्वेदिक वैभव' शीर्षक निबंध।

२५८ पद्मरंग – इनकी कृति 'रामविनोद' का विवरण देकर समयादि विशिष्ट परिचयार्थ सूचित है —अन्य विवरण इनका अज्ञात है। प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल का उल्लेख नहीं है। – खोजविवरण, पृष्ठ ६८।

ये आचार्य श्रीजिनराजसूरि के प्रशिष्य और पद्मकीर्ति के शिष्य तथा पद्मचद्र एवं रामचद्र के गुरु थे। इनका समय इनके शिष्य द्वारा सं० १७२० में रचित 'वैद्यविनोद चौपाई' से सिद्ध है।

२७७ रइधू - रग्घू – इनका पूरा परिचय खोजविवरण से उद्धृत किया जा रहा है — यह जैन धम के अनुयायी थे। 'दश लाक्षणिक धर्मपूजा' नामक ग्रंथ के रचयिता हैं जिसके इस बार विवरण लिए गए हैं। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति में न तो रचनाकाल ही दिया है और न लिपिकाल ही। रचयिता का परिचय भी अज्ञात है। मूल ग्रंथ प्राकृत में है। जिसके साथ साथ अनुवाद भी दिया गया है। पता नहीं कि दोनों कृतियाँ – प्राकृत मूल और हिंदी रूपांतर रग्घू कवि की ही है अथवा अलग अलग रचयिताओं की। – खोजविवरण, पृष्ठ ७१।

१०. आयुर्वेद नो इतहास, पृष्ठ २०१।

११. आयुर्वेद का इतिहास हिंदी साहित्य, सम्मेलन द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ २०६।

सर्वप्रथम कवि का नाम ही गलत दिया है। इनका नाम रघू न होकर रइधू है। कृति का नाम पूजा के स्थान पर 'दशलक्षण जयमाल' होना चाहिए था। कृति प्राकृत मे न होकर अपभ्रंश भाषा मे हैं।

अपभ्रंश भाषा के ख्यातनामा कवियों मे रइधू का स्थान है। इनकी पर्याप्त रचनाएँ इसी भाषा में पाई जाती हैं। कवि का निवासस्थान ग्वालियर था। विशिष्ट साहित्यसर्जक यशःकीर्ति भट्टारक (जिनका समय १५वीं शती का उत्तरार्द्ध और १६वीं का आरंभकाल है) इनके गुरु थे जैसा कि निम्नलिखित पद्य से फलित होता है –

भव्व कमल - सरवोह पयंगो वंदिवि सिरिजसकित्ति असंगो।
तस्स पसाए कव्व पया समि चिरभवि विहिउ असुहणिएसमि॥

— कवि कृत सम्मइ जिन चरिउ।

इनकी ग्रंथप्रशस्तियों का तात्कालिक इतिहास की दृष्टि से विशिष्ट महत्व है। डूंगरसिंह तोमर (राज्यारोहणकाल स० १४८१), कीर्तिसिंह (– कीर्तिपाल) आदि की राजकीय परंपरा का उल्लेख इनकी धार्मिक कृतियों मे मिलता है। जिन दिनों आलोच्य विवरण तैयार किया गया था उन दिनों अपभ्रंश साहित्य से हिंदी भाषा के विद्वानों का परिचय सीमित था अतः इसे प्राकृत भाषा की रचना लिख दिया है।

३२४ टीकाराम – इनके द्वारा वराहमिहिर रचित 'लघुजातक' के पद्यानुवाद का विवरण दिया गया है जिसमें सन् संवत् का उल्लेख नहीं है। रचयिता के पिता का नाम भवानीप्रसाद। इससे अधिक इनके विषय मे और कुछ ज्ञात नहीं। – खोजविवरण, पृष्ठ ७६।

टीकाराम रचित लघुजातक का एक अनुवाद 'आजमखान विनोद' नाम से मुझे भी अपनी शोधयात्रा मे मिला है। पिता का नाम भवानीदास है। रचनाकाल स० १८००, आश्विन शुक्ला ५, रविवार है।

मेरी प्रति खंडित होने से इसके आदि के ८१ पद्य नहीं हैं। परंतु अंत का भाग सुरक्षित है। विवरणिका के पृष्ठ ६०३ पर जो पाठ लघुजातक का दिया है, उससे अस्मदीय प्रति का पाठ तनिक भी साम्य नहीं रखता। विवरण में प्रदत्त पाठ से सिद्ध है कि उसमें कहीं भी कवि का नाम नहीं है, केवल अंतिम पुष्पिका मे उल्लेख है। अतः अपने संग्रह की प्रति का अंत्य भाग उद्धृत कर रहा हूँ ताकि भविष्य में कभी यह प्रति कहीं पूर्ण मिले तो पता चल जाय कि वस्तुतः यह कृति किस टीकाराम की है।

आजमखाँन विनोद

अंतिम भाग –

आजमखाँन नवाब बली गुणपुंज सदा बहु दान करै जू ।
मत्त मतंग तुरंग महीधर हेमनि दै सु निहाल करै जू ।
जाचक भोर जु द्वार लसै लहि के मन काम दरिद्र हरै जू ।
देत असीस सबै चीरजीवहु जीवहु भूपति लोक ररै जू ॥१६४॥
आप विराजत ज्यौं मघवा बरसे मणि हेमनि के झरलावै ।
ताकी सभा बिलसै जु महेंद्र सभासी प्रकासी बड़ौ जस गावै ।
जोतसी पंडित बैद कबीसुर चारण गायक बांछित पावै ।
आजमखाँन नरेस सदा सुखसागर नागर को गुण भावै ॥१६५॥

दोहा

उपाध्याय श्री नयनसुख ज्योतिष शास्त्र प्रवीण ।
तिन सौं हित करि कै कह्यौ, हम ज्योतिष चित दीन ॥१६६॥
तब ही तो श्री नयनसुख मोकहुँ आज्ञा दीन ।
लघुजातक भाषा करौं पढ़िहैं महा प्रवीण ॥१६७॥
हम यातैं भाषा करयौ अति सूबो यह ग्रंथ ।
जो कोई याकौं पढ़ै समुझै ज्योतिष पंथ ॥१६८॥
नाम वशिष्ट जु परम ऋषि, सब गुण मांझ प्रसंस ।
तिनकी सब सेवा करें जै नृप सूरज वंश ॥१६९॥
तिन ही के शुभ गोत्र में पंडित दुर्गादत्त ।
तिनके सुत कीरति भये कीरतवंत कहत्त ॥१७०॥
रामकृष्ण तिनके भये रामकृष्ण के भक्त ।
जिन पोषे बहु बिप्र वर, सु वचन हरिगुण रक्त ॥१७१॥
तिनके सुत अति विदित जग, पंडित बहु गुणवंत ।
नाम भवानीदत्त जिहि जानत है सब संत ॥१७२॥
तिनकौ सुत गुरुपद कमल पूजक टीकाराम ।
कियौ यथामति ग्रंथ तिन, भाषा में अभिराम ।१७३॥
संवत विक्रम नृपति को अष्टादस सत मांनुं ।
आश्विन सुदि तिथि पंचमी, अरु वासर है मांनुं ॥१७४॥
ता दिन संपूरन कियौ आजमखाँन बिनोद ।
पढ़ै सुनै जो ज्योतिषी ता मन उपजै मोद ॥१७५॥

इति श्रीमन्महानृपतिमणिपरमप्रवीरसकलजनाह्लादप्रवर्द्धन श्रीनवाब आजमखांन कारिते 'आजमखाँन विनोद' नामक टीकाराम कृत भाषा लघुजातक नामक ग्रंथ संपूर्ण ॥

लिखितं ऋषि लालमणि पाडलिपुत्र मध्ये संवत् १८६२ का मार्ग शिर सुदि २ शनिवासरे रात्रौ संपूर्ण कृत्वा ॥

उपर्युक्त पद्यों से कवि का वंशवृक्ष इस प्रकार बनता है –

दुर्गादत्त
|
कीरति
|
रामकृष्ण
|
टीकाराम

कवि ने आजमखान का अद्भुत वर्णन कर नगर का नामोल्लेख नहीं किया। संभवतः आजमखान वही होना चाहिए जिसके यहाँ रहकर कवि सोमनाथ ने 'नवाबोल्लास' की रचना की थी। इन्हीं ने आजमगढ़ बसाया था, ऐसा कहा जाता है। हिंदी के प्रति नवाब को ही नहीं, अपितु उसके परिवार को भी अनुराग था। इसके लघु बंधु अजमतखाँ के आश्रित कवि बलदेव कृत 'अजमतखाँ यशवर्णन' का उल्लेख 'हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों के अठारहवें त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९४१ - ४३) में आया है। वहीं पर सूचित परिचय से विदित होता है कि आजमखाँ के पिता का नाम विक्रम था। बादशाही युग मे परिस्थितिवश मुसलमानी धर्म स्वीकार किए जाने पर भी इनके आनुवंशिक कौलिक संस्कार पूर्ववत बने रहे। परिणाम-स्वरूप पुरोहितादि का आदर सत्कार भी यथेष्ट परिमाण में होता रहा।

पंद्रहवाँ विवरण (सन् १९३२ - १९३४)

२ अहमद[12] – इनका अस्तित्वसमय निर्धारित करते हुए खोजविवरण के प्रथम परिशिष्ट में सूचित किया गया है कि 'वह जहाँगीर बादशाह के राज्यकाल में सं० १६२८ के लगभग वर्तमान था।' इसी परिशिष्ट में आगे ब्रह्म गुलाल के प्रसंग मे जहाँगीर का सिंहासनारोहणकाल सं० १६६२ माना है (पृष्ठ २८) जो सही है। सं० १६२८ में तो स्वयं अकबर शासक था।

अहमद की कोई बृहदाकार रचना अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुई। स्फुट शृंगारिक रचनाएँ पर्याप्त संख्या में प्राप्त हैं। मेरे संग्रह के सत्रहवीं शती में प्रतिलिपित एक हस्तलिखित गुटके में 'लोचना दशक' आदि कई अज्ञात रचनाएँ इसी कवि की सुरक्षित हैं। 'हजारों' में भी इनके छंद दृष्टिगोचर होते हैं। यह

१२. २ अहमद – इनका अस्तित्वकाल सं० १६७८ था जब जहाँगीर बादशाह शासन कर रहा था। संवत् १६२८ भूल से छप गया है। — खोजविभाग।

स्मरणीय है कि अहमद नामक एक जैन कवि भी हुए हैं जिनके आध्यात्मिक पद तथा वैराग्य गीत उपलब्ध हैं।

७ आनंदघन – घनानद के ५०० से अधिक पद्य मेरे सग्रह के दो गुटकों मे प्रतिलिपित हैं, पर इनमें से कितने ज्ञात हैं और कितने अज्ञात यह कहना कठिन है। मेरे अवलोकन में आनदघन या घनानद के स्फुट काव्यों का कोई ऐसा सग्रह नहीं आया जिससे इसका निर्णय किया जा सके। प्राचीन यश - कवित्तों मे कुछ कवित्त इनके सबध में आए हैं जिनका प्रकाशन मुझसे तो संभव नहीं। कारण इसके शीर्षक मे ही स्पष्ट हो जायगा—'कवित्त आनदघन हरामजादा को'। कवित्त क्या यह तो भँड़ौआ है।

१६ भागचंद – इनके द्वारा प्रणीत पदसग्रह का विवरण देकर परिचय मे केवल इतना ही सूचित किया है — 'रचयिता का कोई वृत्त नहीं मिलता' (पृष्ठ २५)।

शोध करने पर पता चला कि कविवर भागचद जैनसमाज मे सुकवि और सफल अनुवादक के रूप मे बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। यह ईसागढ़ (ग्वालियर) निवासी ओसवाल कुलावतस दिगबर जैन थे। हिंदी भाषा पर इनका अधिकार था। साहित्यसेवी होने के साथ आध्यात्मिक वृत्ति के महापुरुष थे। कवि होते हुए भी ये पार्थिव सौंदर्य की अपेक्षा आत्मिक सौंदर्य में लीन रहते थे। वही अनभूति जनसाधारण के लिये लिपिबद्ध कर गए। कवि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं –

१. नेमिनाथ पुराण (र० का० स० १६०७ सावन सुदि ५)।
२. उपदेशसिद्धात रत्नमाला (र० का० स० १६१२)। यह षटकर्मोपदेश-माला का अनुवाद है।
३. प्रमाणपरीक्षा भाषा (र० का० स० १६१३)।
४. श्रावकाचार भाषा (र० का० स० १६२२ आषाढ़ सुदि ८)।
५. समेदशिखर पूजा (र० का० स० १६२६)।

प्राप्त कृतियों के आधार पर इनका समय स्वतः सिद्ध है।

प्रसगतः यहाँ सूचित करना आवश्यक जान पड़ता है कि इसी नाम के एक और भिन्न भागचद के ५० छंद मेरे सग्रहस्थ हजारे मे हैं। कृति का नाम 'लीला-वती' दिया हुआ है। भाषा और भाव उत्तम हैं। एक छद प्रस्तुत करना उचित जान पड़ता है –

अथ लीलावती ग्रंथ लिष्यते

कवित्त

मुष अरविंद भाल ससि भाग बेनी नाग
भौंहैं सुलताल की कमान जैसी जाँनीये।

नैन पैन खंजन कटाच्छ तीर कीर चौंच
नासा सास वास घनसार ज्यौं बखानियै ॥
भागचंद दाँत हीरा पाँति ओठ मूँगा मनौं
कंठ कंचु वैन पिक कुच कुंभ ठानियै ।
कटि छीन पीन है नितंब जांघ केलितरु
पाइ पौम ऐसी नारी कृता की प्रवाँनियै ॥

२२ भाऊ कवि – इनकी नवज्ञात कृति पुष्पदत पूजा का विवरण देते हुए कविपरिचय में सूचित किया गया है कि 'आदित्यकथा नामक रचना के साथ पिछले एक खोजविवरण में इनका उल्लेख हो चुका है। देखिए खोजविवरण (१६०० सं० ११४)।'

सन् १६०० का खोजविवरण इन पंक्तियों के लिखते समय मेरे संमुख नहीं है। हाँ, 'हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण' अवश्य सामने है। उसके पृष्ठ १०८ पर भाऊ कृत 'आदित्यकथा' का उल्लेख है।

यहाँ प्रसगतः १४वें विवरण की भाऊ विषयक भ्रांति का परिमार्जन अपेक्षित है। सूचित त्रैवार्षिक विवरण के पृष्ठ १५१ पर दी गई आदित्यकथा को भाऊ कृत बताया गया है, जो शुद्ध है। क्योंकि विवरण में जो अंतिम प्रशस्ति दी गई है उसके २५वें पद्य मे ही 'भानुकीर्ति मुनिवर यों कही' उल्लेख है, जो स्पष्ट सूचित करता है कि कथा का रचयिता मुनि भानुकीर्ति है न कि भाऊ। आश्चर्य की बात तो यह है कि पूरी प्रशस्ति मे कहीं भी भाऊ नाम का संकेत तक नहीं है। फिर यह उद्भावना कैसे हो गई? यद्यपि भाऊ ने भी 'आदित्यकथा' का प्रणयन अवश्य किया है, पर वह आकार प्रकार मे इससे बड़ी है। कालक्रम से इसके कई संस्करण हो गए हैं, जिनकी पद्यसख्या इस परिमाण मे मिलती है – ५७, ५६, १५०, १५७ और १६६। इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में भी एक प्रति है जिसका विस्तृत परिचय लेखक कृत 'राजस्थान का अज्ञात साहित्यवैभव' में दिया गया है।

डा० कस्तूरचद जी कासलीवाल के सपादकत्व में जयपुर से प्रकाशित 'प्रशस्ति-सग्रह' के पृष्ठ २०५ पर भाऊ कृत 'आदित्यकथा' का विवरण प्रकाशित है, पर न जाने क्यों संपादक महोदय ने इसे अज्ञात कर्तृक मान लिया, जब कि प्रकाशित पाठ मे कवि का नाम विद्यमान है —

गरग गोत मलूकौ पूत भयौ कवियन भगति संजून।

वस्तुतः पाठ यह होना चाहिए था –

गरग गोत मलूकी पूत भाऊ कबिमन भगति संजूत ।[13]

भाऊ के स्थान पर भयौ शब्द आ जाने से इतना भ्रम फैल गया।

रचनाकाल पर कवि स्वयं मौन है, जब कभी किसी लेखक की रचना में निर्माणकाल का स्पष्ट निर्देश न हो तब उसके अस्तित्वकाल के संबंध में समस्या खड़ी हो जाती है। यदि उसकी अन्य संवत् वाली रचना उपलब्ध हो तब तो कोई बात नहीं। भाऊ की कोई कृति रचनाकालसूचक नहीं है, अतः केवल प्राचीन से प्राचीन प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर अनुमान ही करना पड़ता है। इनकी 'आदित्यकथा' की अद्यावधि ज्ञात प्राचीन प्रति सं० १७२० की जयपुर के जैन शानागार में प्राप्त हुई है। उससे केवल इतना ही कहा जा सकता है कि एत.पूर्व इनकी स्थिति असंदिग्ध है।

२६ भोलानाथ – इनकी रचना 'सुमनप्रकाश' का परिचय देकर बताया गया है — 'ये भरतपुर राज्य के निवासी थे।' इसी नाम के दो और कवि भी पूर्व विवरणों में आ चुके हैं। पर वे विवरण मेरे देखने मे नहीं आए।

भोलानाथ कवि भरतपुर राज्य के निवासी नहीं थे। हाँ, कुछ दिन भरतपुर रहे अवश्य थे। मूलतः तो वे गंगा यमुना के मध्य भाग — जो अंतर्वेद कहलाता है — देवकुलीपुर के निवासी थे। इनके पूर्वज राम ने अपने यौद्धिक पराक्रम द्वारा तत्कालीन बादशाह से 'ठाकुर' पद प्राप्त किया था। इनके पूर्वजों के साहित्यिक वैभव और पराक्रमों से विदित होता है कि सारा परिवार संस्कारशील तथा सरस्वती का उपासक रहा है। इनके पितामह देवकुलीपुर से आकर आगरा बस गए और पांडित्यपूर्ण प्रतिभा से किसी नवाब को प्रभावित कर उनसे मैत्री जोड़ ली। इन्हीं के पौत्र और नदराम के पुत्र थे विवक्षित भोलानाथ कविवर। वह शाहजहाँ द्वितीय द्वारा संमानित हुए। सूर्यमल्ल जाट इन्हें शाह से माँगकर भरतपुर लाए और कुछ काल वहाँ रहकर ये जयपुर चले आए और तत्कालीन महाराज माधवसिंह तथा प्रतापसिंह के परामर्शदाता प्रकांड विद्वान् सदाशिव भट्ट के आश्रय में रहने लगे। इनके पुत्र शिवदास और पौत्र चैनराम भी पिता के समान प्रतिभाशाली पंडित थे।

चैनराम कृत 'रससमुद्र' मे कवि ने अपने वंश का परिचय इस प्रकार दिया है —

१३. पुष्पदंत पूजा की ग्रंथप्रशस्ति मे भी बिलकुल यही पाठ है। – **हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का पंद्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, पृष्ठ ८३।**

कान्यकुब्ज शुक्ल कुल भये राम यह नाम।
अंतरवेदिहि विविकुलीहि तहाँ कियो सुख धाम ॥
इक सरनागत ना तज्यो तजे सबनि निज गात।
तब दिल्लीस खिताब दिय यह ठाकुर विख्यात ॥
तिनके कुल में भो प्रगट दुर्गादास सु नाम।
पंडित पौराणिक भयो रहे सु ताही ठाम ॥
तिनके सुत भोपति भयो कियो आगरे बास।
गुणनिधि जानि नवाब हू राखे तिन निज पास ॥
नन्दराम तिनके तनय कबि पंडित परबीन।
ताके भोलानाथ जिहि कीन्हें ग्रंथ नवीन ॥
छहों शास्त्र अध्येन सों गये दिल्लिपति पास।
शाहजहाँ पतिशाह के भयो मिलत हुलास ॥
पाच सदी मनसब दियो राखे करि अति प्रीति।
तब तिनको रुचि जानि जिन भाषा किय इहि रीति ॥
सूरजमल्ल ब्रजेश सो गयो दिलीपति धाम।
ले आयो भुवनाथ को दिए वांछित धन धाम ॥
माधवेश अंबापतिहि मिले तहाँ ते आय।
तिनहूँ भोलानाथ को राखे बहु चित लाय ॥
तिनके सुत शिवदास सो भाषा परम प्रवीन।
हुकम भूप को पाय जिन भाषा भारत कीन ॥

पंडित गोपालनारायण जी बहुरा ने 'कर्णकुतूहल' की भूमिका पृष्ठ ५ पर सूचित किया है कि 'रससमुद्र' का प्रणयन शाहपुराधीश श्रीहनुमतसिंह के लिये सगृहीत किया था।' परतु शाहपुरा के इतिहास में इस नाम के किसी राजा का पता नहीं चलता। संभव है सूचित शाहपुरा अन्य हो।

भोलानाथ की अन्य रचनाएँ इस प्रकार पाई जाती हैं –

१ - श्रीकृष्णलीलामृत
२ - सुखनिवास (गीतगोविंद का अनुवाद, ठाकुर चतुरसिंह प्रीत्यर्थ, लेखनकाल १८३०)।
३ - नायिकाभेद (सं० १८१८ में लिखित, नाहरसिंहार्थ)।
४ - नखशिख (सं० १८३० में लिखित)।
५ - नवलानुराग।
६ - युगलविलास।
७ - इश्कलता (सं० १८२७, पंजाबी भाषा में)।

८ - लीलापचीसी (लेखक के संग्रह में सुरक्षित)।

९ - भगवद्‌गीता (भरतपुर के नवलसिंह की प्रेरणा से नाहरसिंह के लिये)।

१० - नैषध (सं० १८४०, इसके चार सर्गों का अनुवाद किशनगढ़ के सरस्वती भंडार में उपलब्ध है)।

११ महाभारत — पद्यानुवाद।

१२ - भागवत दशमस्कंध का अनुवाद (नवलसिंह के लिये, ले० १८२९)।

१३ लीलाप्रकाश (सं० १८२० में लिखित)।

१४ - प्रेमपचीसी।

१५ - कर्णाकुतूहल।

इनमें से १ और १५ संख्यावाली कृतियाँ श्रीयुत गोपालनारायण जी बहुरा द्वारा सुसंपादित होकर 'राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित हैं। उनकी विद्वत्तापूर्ण भूमिका का उपयोग भोलानाथ के परिचयलेखन में किया गया है।

३४ बुलाकीदास[१४] — 'जिन चौबीसी', 'श्रीमन्महाशीलभूषण' और 'पांडवपुराण' का विवरण क्रमशः ३४ ए०, बी० और सी० संख्या में दिया है। पृष्ठ २८ पर कविपरिचय में बताया गया है कि वह मूलतः भरतपुर राज्यातर्गत बयाना के निवासी थे। संयोगवश जहानाबाद जाकर बस गए थे। इनके गुरु कोई रतन नामक ग्वालियर के व्यक्ति थे। कवि ने अपनी रचनाओं में औरंगजेब के शासन की महती प्रशंसा की है।

यहाँ पर कुछ बातें विचारणीय हैं। कवि कृत श्रावकाचार भाषा की एक प्रति का उल्लेख इतःपूर्व सन् १९२३ – २५ के विवरण में आ चुका है। इसे मैंने

१४ ३४ बुलाकीदास – इनका परिचय सन् १९३२ ३४ के खोजविवरण सं० ३४ और सन १९२३ - २५ के खोजविवरण सं० ७१ के अतिरिक्त खोजविवरण संवत् २००४ की सं० २४१ और संवत् २०१० की सं० ९१ पर भी आया है। परवर्ती खोजविवरणों के अनुसार 'पांडवपुराण' का रचनाकाल सं० १७५४ ही है – सं० १८२३ नहीं। सन् १९३२ - ३४ के खोजविवरण की अशुद्धि का परिहार परवर्ती खोजविवरणों में हो गया है। १९२३ - २५ के खोजविवरण की सं० ७१ पर उल्लिखित पुस्तक 'श्रावकाचार' संवत् २०१० के खोजविवरण की सं० ९१ पर भी है। दोनों ही प्रतियों में रचनाकाल संवत् १७४७ है। सन् १९३२ - ३४ के खोजविवरण सं० ३४ पर भूल से संवत् १७१७ छप गया है। — खोजविभाग।

नहीं देखा है, पर आलोच्य विवरण में बताया गया है कि 'श्रावकाचार' का रचना-समय सं० १७३७ है, किंतु इन पंक्तियों के लेखक की प्रति में सं० १७८७ वैशाख सुदी ३ दिया है जो इसलिये अत्यधिक विश्वसनीय है कि अन्य प्रतियों में भी वही पाठ और रचनासमय मिलता है।

सख्या ३४ सी० में 'पांडवपुराण' का परिचय जिस प्रति से उद्धृत किया है उसमे उसका रचनासमय सं० १८२३ आषाढ़ वदि २ है जो कवि की अन्य रचनाओं में दिए गए संवतों के प्रकाश में संदिग्ध है। यद्यपि टिप्पणीकार ने भी इसपर अपना संदेह प्रकट किया है, पर वह एतद्विषयक अन्य साधनों की सहायता लेकर निष्कर्ष पर पहुँचने मे असमर्थ रहा है। वस्तुतः पांडवपुराण का रचनाकाल सं० १७५४ है (—राजस्थान के जैनशास्त्र भंडारों की सूची भाग ४, पृष्ठ १५०)। पर आश्चर्य है कि जयपुर से प्रकाशित जैन शास्त्र भंडारोंकी सूची भाग २, पृष्ठ १६२ पर श्रावकाचार की एक ऐसी प्रति का उल्लेख है जिसका प्रतिलिपिसमय स० १७२३ है। प्रति का पुनर्निरीक्षण अपेक्षित है।

संख्या ३४ बी० मे 'श्रीमन्महाशीलभूषित' कृति का नाम ही संदिग्ध लगता है, क्योंकि यह शब्द विशेषणसूचक है जैसा कि सख्या ३४ सी० की पुष्पिका मे व्यवहृत शब्दावली 'इति श्रीमन्महासीलाभरणभूषित जैनी नामा किताया भारत भाषाया' से स्पष्ट है। ऐसा लगता है कि कृति का नाम कुछ और रहा होगा तथा भ्रमवश अंतिम प्रशस्ति के कतिपय शब्दोंको ग्रथनाम मान लिया है।

इसमे संदेह नहीं कि बुलाकीदास कवि और साहित्यकार थे, पर इनके वैयक्तिक जीवन को आलोकित करनेवाले ऐतिहासिक उल्लेख अनुपलब्ध हैं। इसी नाम के कवि का 'वचनकोष' भी प्राप्त है, पर वह इसी बुलाकीदास की कृति है यह बिना प्रति का निरीक्षण किए नहीं कहा जा सकता।

४३ छाजूराम — ज्योतिषविषयक ताजिक के अनुवादक कोटानिवासी छाजूराम कवि भी थे। इनका समय स० १७६२ है। इनके थली, मारवाड़ी, ढुंढाड़ी और हाडोती भाषाओं के कवितावद्ध नमूने मिले हैं।

७४ हरचंद (?) महाचंद – कविपरिचय की टिप्पणी इस प्रकार है — ये आगरा के समीप साहगज के निवासी थे। इन्होंने रुक्मणिमगल नामक रचना की। अपना उपनाम इन्होंने 'द्विजदास' रखा था, जिसका अर्थ ब्राह्मणों का सेवक है। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति मे रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं। — खोजविवरण, पृष्ठ ३५।

इन पंक्तियों के लेखक के पास उपर्युक्त रुक्मिणीमंगल की एक प्रति सुरक्षित है। इससे पता लगता है कि खोजविवरण मे रचयिता का नाम गलत दिया है।

वस्तुतः इसके प्रणेता हरचंद[१५] न होकर महाचंद द्विज हैं और इन्होंने इसकी रचना सं० १७६६ पौष सुदि १ सोमवार को की। परिचयार्थ कृति का आदि और अंत भाग उद्धृत किया जा रहा है—

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

अथ रुक्मिणीमंगल लिष्यते

दोहा

गुरुपद बंदन प्रथम ही द्वितिय सकल मुनि वृंद।
नमस्कार कर जोरि कै बरनुं रुक्मिणी छंद ॥ १ ॥

१५. ७४ हरचंद – खोजविवरण में इनका उल्लेख तीन स्थानों पर हुआ है — सन् १९१२ - १४ के खोजविवरण में पृष्ठ १४५ सं० ११४ पर, सन् १९३२ - ३४ के खोजविवरण में पृ० ३५ सं० ७४ पर और संवत् २००१ - ०३ की खोज में सं० १७७ पर। सन् १९१२ - १४ तथा संवत् २००१ - ०३ के खोजविवरणों के अनुसार ये शाहगंजनिवासी नागर ब्राह्मण थे और संवत् १७७६ के लगभग वर्तमान थे। १९३२ - ३४ के खोजविवरण में पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है जो संभवतः यों होना चाहिए —

महरचंद निज नाम है पुनि दुजदास बखान।
शाहगंज वासी सदा करें कृष्ण को ध्यान ॥

अस्तु खोजविवरण १९३२ - ३४ और १९१२ - १४ तथा संवत् २००१ - ०३ के अनुसार रचयिता का नाम महरचंद ही सिद्ध होता है। सन् १९१२-१४ और सं० २००१ - ०३ के पाठ क्रमशः इस प्रकार हैं —

महै (ह) रचंद द्विज जग सुन्यो नागर रूपनिधान।
मंगल कीयौ हेत सों साहि गंग (ज) सुभ थान ॥
मंगल कीन्हों हेत सों स्याहगंज सुभथान।
महै (ह) रचंद द्विज जग सुन्यों नागर रूपनिधान ॥

दो शब्द रचनाकाल के विषय में भी। 'गुणयासी' (गये गुणयासी बीति) का तात्पर्य उन्यासी होना चाहिए, उनहत्तर नहीं। अतः रुक्मिणीमंगल की रचना संवत् १७७९ में हुई, १७६९ में नहीं। — खोजविभाग।

गोविंद गौरि गणेस भजि तजि मन सकल विषाद।
सुफल होय कारज सकल तिनके सकल प्रसाद ॥ २ ॥

सोरठा

मन उपज्यौ अभिलाष रुक्मनि मंगल करन कौ।
तीन देव करि साषि ब्रह्मा विष्णु महेस ॥ ३ ॥

दोहा

अंत

संवत् सत्रैसे बरस गये गुरयासी बीति।
पोष सुदी तिथि पंचमी सोमवार सौ प्रीति ॥४०३॥
मंगल कियौ हेत सौ सहीगंग सुभ थांन।
महाचंद दुज जग सुन्यौं नागर रुप निधांन ॥४०४॥
सब तजि भजि राधारवण जब लग ए मैं प्राण।
मन वच कर्म करि द्विज कहै पावे पद निर्वाण ॥४०५॥

इति श्री रुक्मनी मंगल संपूर्ण

खोजविवरण में जो पाठ दिया है इससे बिलकुल मेल नहीं खाता।

७७ हरिदास – ये निंबार्कसंप्रदाय के संत थे। इनकी उल्लेखनीय रचना 'गुरुनामावली' का विवरण देते हुए अन्वेषक ने पूरी पट्टावली उद्धृत नहीं की। केवल पीतांबर स्वामी तक ही नामावली देकर संतोष कर लिया।

वस्तुतः निंबार्कसंप्रदाय की पूरी पाटावली उद्धृत हो जाती तो अवश्य ही नवीन जानकारी प्राप्त होती। कृष्णभक्तिपरक यही एक ऐसा संप्रदाय रहा है, जिसके आचार्य एवं क्रमिक साहित्यिक विकास पर अत्यंत सीमित कार्य हुआ है। निंबार्क मठ और मंदिरों में भी जो सामग्री उपलब्ध है वह भी विद्वानों को सुलभ नहीं।

मेरे संग्रह में इस संप्रदाय के परम संत एवं कवि गोविंद स्वामी की 'हरि गुरु सुयश भास्कर' नामक एक महत्वपूर्ण कृति है जो संप्रदाय के सर्वांगीण इतिहास पर अभूतपूर्व प्रकाश डालती है। रचना तो सं० १८२६ की ही है, पर जहाँ तक विशिष्ट ज्ञातव्यों का प्रश्न है कृति उपादेय और अनुसंधेय है। इसके गुरु वंदना-प्रकरण में सं० १८२६ तक के आचार्यों की नामावली आ गई है। जहाँ से विवरण में क्रम टूटा है उसके आगे के नाम इस प्रकार हैं — पुरुषोत्तमाचार्य - विशालाचार्य- माधवाचार्य – बलभद्राचार्य – पद्माचार्य श्यामाचार्य – गोपालाचार्य – कृपाचार्य – पद्मनाभ भट्ट – रामचंद्र भट्ट – वामन भट्ट – कृष्ण भट्ट – पद्माकर भट्ट – श्रवण भट्ट – माधव भट्ट – श्याम भट्ट – गोपाल भट्ट – बलभद्र भट्ट – गोपीनाथ भट्ट – केशव

भट्ट – गंगल भट्ट – केशव भट्ट (केशव काश्मीरी के नाम से इनकी विशेष प्रसिद्धि रही है, इनके जीवन पर प्रकाश डालनेवाला संस्कृत भाषा में रचित एक चरित्र मेरे संग्रह में सुरक्षित है) — श्री भट्ट – हरिव्यास – परसुराम – हरिवंश – नारायण – वृंदावनदेव और गोविंद स्वामी।

आचार्यनामावली शीर्षक एक स्वतंत्र रचना भी उदयपुर के निंबार्क मठ में सुरक्षित है।

निंबार्कसंप्रदाय के आचार्यों के ऐतिहासिक परिचय पर प्रकाश डालनेवाली सामग्री अत्यल्प है। उपर्युक्त श्री भट्ट, जो आदि वाणीकार के रूप में विख्यात रहे हैं, को बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथों के विवरण भाग २ में निंबार्क का शिष्य बताते हुए किसी ठाकुर जुगलकिशोर का आश्रित सूचित किया है और अस्तित्वसमय सं० १६०१ भी बताया है। इस विरोधाभास का परिहार इन पंक्तियों का लेखक 'बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित प्राचीन हस्तलिखित पोथियों के विवरण भाग २ — आवश्यक परिमार्जन' शीर्षक निबंध में कर चुका है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि श्री भट्टजी केशव काश्मीरी के शिष्य और हरिव्यास जी के गुरु थे। वह किसी के आश्रित नहीं थे, न निंबार्काचार्य के शिष्य ही थे। विद्वान् संपादक ने निंमादित्य के समय पर थोड़ा भी ध्यान दिया होता तो यह भूल न होती। कवि ने अपने इष्ट को 'ठाकुर जुगलकिशोर' लिखा है, पर समुचित अर्थानुसंधान के अभाव में जुगलकिशोर को सामान्य मनुष्य मान लिया गया।

कवि की कृति का नाम भी 'आभासदोहा' सूचित कर हास्यास्पद स्थिति खड़ी कर दी है। निंबार्कसंप्रदाय की अधिकांश रचनाओं में यह क्रम देखा गया है कि जिस विषय का समर्थन या वर्णन कवि को इष्ट होता है उसका सार भाग अर्थात् आभास प्राथमिक दोहे में देकर आगे गेय पद में दोहे के भावों का विस्तार रहता है।

यहाँ मैं एक बात की सूचना देना आवश्यक समझता हूँ कि मुझे अभी अभी एक ऐसी कृति मिली है जो निंबार्कसंप्रदाय के आचार्य हरिव्यासजी द्वारा प्रतिष्ठित वृंदावन स्थित राधाकृष्ण के मंदिर के इतिहास पर अभूतपूर्व प्रकाश डालती है। इसका निर्माण गिरधारीदास नामक किसी विप्र ने कराया था। ग्वालियरवाले किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति का भी उल्लेखनीय सहयोग रहा है। इसमें किस किस शिल्पकार ने मंदिरनिर्माण में योग दिया, पाषाण किस आकर से लाया गया, मुख्य प्रतिमा के लिये किस खान से प्रस्तर की व्यवस्था की, वहाँ सांप्रदायिक विरोध कितना सहना पड़ा और किस मुहूर्त में खात और प्रतिष्ठाकार्य संपन्न हुआ आदि अनेक मूल्यवान सूचनों का

अच्छा संकलन है। इसके रचयिता हैं वृंदावन देव जिनका उल्लेख गोविंदस्वामी गुरु के रूप मे ऊपर आ चुका है।

निंबार्क मतानुयायी आचार्यों के ऐतिहासिक विकासक्रम पर शोध की बड़ी आवश्यकता है।

९१ ईश्वरदास – इनकी सुप्रसिद्ध कृति 'गुणहरिरस' का परिचय विवरण मे दिया है। कल्पना की गई है कि यह सभवतः खोजविवरण सन् १९२६ - २८ सख्या १८५ वाले ईश्वरदास हों। पर हरिरसवाले ईश्वरदास तो चारण थे और रोहड़िया शाखा से संबद्ध थे। जोधपुर के समीप माद्रेस के निवासी थे। इनका जन्म स० १५९५ में हुआ था जैसा कि निम्नलिखित पद्य से स्पष्ट है –

पनरासौ पिच्याणवै जनम्यां ईसरदास।
चारण चरण चकार में उण दिन हुवौ उजास॥

इनके जीवन के ४० वर्ष जामनगर मे व्यतीत हुए थे। वहाँ के राजपरिवार द्वारा इन्हे यथेष्ट समान प्राप्त था। ये परम भगवद्भक्त कवि थे। राजस्थानी भाषा का शायद ही कोई ऐसा विज्ञ होगा जो इनकी भक्तिप्रधान रचना हरिगुणरस से अनभिज्ञ हो। कवि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं – १. छोटा हरिरस, २. बाललीला, ३. गरुड़ पुराण, ४. निंदास्तुति, ५. सभापर्व, ६. हालां झालां रा कुडलिया आदि।

इनका स्वर्गवास लगभग ८० वर्ष की उम्र में सं० १६७५ में हुआ। सन् १९२६ - ८ वाले ईश्वरदास निश्चय ही इनमे भिन्न हैं।

१०५ कमाल – खोजविवरण मे पृष्ठ १९८ पर कबीर के पुत्र कमाल की वाणी का परिचय दिया है। कमाल की कोई स्वतत्र ग्रंथरचना उपलब्ध नहीं है, केवल फुटकर छद ही मिलते है। मेरे सग्रह में कमाल के दो छद हैं जिन्हें उद्धृत कर रहा हूँ –

रेखता

मुक मेदांन का षेलना षूब है जी देषें कौंन मैदांन में गैंद मारे।
देषें कौनका घोड़ला चाब चाले दबे कौन होमत में हाथ मारे॥
बाजी आय लागी इतमाम हुआ देषैं कौन जीतै देषें कौन हारे।
कहत कमाल कबीर का बालका सोइ जीते जिको क्रोध मारे॥

—१८वीं शती के 'कवित्तकोश' से।

ज्ञान का गेंद कर सूरत का डंड कर षेल चोगांन मैदान मांही।
जगत का भरमना छोड़ दे बालका आयजा भेष भगवान(मांहीं)॥

भेष भगवान का सेस मेहमा कर सेस के सीस पर ध्यांन धारी।
पद्मासण कर पवन पर जीत घर गगन के मेहल में मदन जारी।
कहत कमाल कबीर का बालका करम के रेप पर मेष मारी॥

—सं० १८५२ के पत्र से उद्धृत।

१३० लक्ष्मीदास[१६] – यशोधरचरित्र और श्रेणिकचरित्र इन दो रचनाओं का परिचय दिया गया है, जिनका रचनाकाल क्रमशः सं० १७८१ और १७३३ है। पृष्ठ ४६ पर ग्रंथकार की जो टिप्पणी दी है उससे निम्न बातें प्रकट होती हैं –

१. यशोधरचरित्र भट्टारक देवेंद्रकीर्ति ने संस्कृत भाषा में निबद्ध किया था, जिसका आधार पंडित लक्ष्मीदास ने अपने हिंदी के यशोधरचरित्र में लिया।

२. श्रेणिकचरित्र जिसे मूलरूप में शुभचंद्राचार्य ने संस्कृत भाषा में लिखा, लक्ष्मीदास ने इसे हिंदी भाषा में रूपांतरित किया।

सूचित तथ्य सर्वथा निर्भ्रांत नहीं हैं। प्रत्युत वैषम्य को लिए हुए हैं। यशोधरचरित्र की प्रशस्ति डा० कस्तूरचंद कासलीवाल द्वारा संपादित और जयपुर से प्रकाशित 'प्रशस्तिसंग्रह' में पृष्ठ २५० पर प्रकाशित है। उससे पता चलता है कि खोजविवरण के अन्वेषक महोदय ने अपने विवरण में प्रशस्ति का पर्याप्त भाग छोड़ दिया है, जो ऐतिहासिक सूचनों से युक्त था। जो भाग विवरण में उद्धृत है, उसे भी ठीक से न समझने के कारण न केवल कविपरिचय में ही भ्रांति हो गई, अपितु

१६. १३० लक्ष्मीदास – इनका परिचय संक्षिप्त विवरण में इस प्रकार आया है — 'शेरपुर (रणथंभौर की तलहटी) के निवासी। खंडेवाल वैश्य। गोत्र चांदुवाड़। अनंतर राजाराम सिंह (जयपुर) के राज्य अंतर्गत सांगावती में रहने लगे। किसी दशरथ के पुत्र सदानंद इनके सहायक थे जिनकी प्रेरणा से ग्रंथरचना हुई। संवत् १६११ के लगभग वर्तमान।'

यह परिचय संवत् २००४ के खोजविवरण सं० २५२ से लिया गया है। उक्त स्थल पर १९३२ - ३४ के खोजविवरण की पुस्तक श्रेणिकचरित्र की दूसरी प्रति मिली है। अस्तु, १९३२ - ३४ के खोजविवरण की अशुद्धि का परिहार सं० २००४ - ०६ के खोजविवरण में हो गया है।

जहाँ तक 'यशोधर राजा का चरित्र' के रचयिता का प्रश्न है वह वस्तुतः 'खुशालचंद काला' ही हैं — लक्ष्मीदास नहीं।' खोज में खुशालचंद काला की अनेक पुस्तकें मिली हैं। — खोजविभाग।

नवीन उद्भावना भी कर डाली गई। शंका यहाँ तक घर कर गई कि यशोधरचरित्र का हिंदी अनुवादक क्या सचमुच लक्ष्मीदास है।

विचारणीय प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या भट्टारक देवेंद्रकीर्ति ने कोई यशोधरचरित्र संस्कृत भाषा में रचा था ? यों तो वह अपने समय के समर्थ विद्वान थे, पर यशोधरचरित्र इनके द्वारा रचित आज तक नहीं सुना गया। विवरण में दी गई सूचित चरित्र की अंतिम प्रशस्ति के परीक्षण के बाद भी यह तथ्य तो प्रकट होता ही नहीं है कि इनके द्वारा रचित यशोधरचरित्र का सहारा लक्ष्मीदास ने अपने अनुवाद में लिया होगा, जब कि विवरण में विशेष ज्ञातव्य प्रस्तुत करते हुए लिखा है – संस्कृत मूल ग्रंथ का रचयिता भट्टारक देवेंद्रकीर्ति है और पद्यबद्धकर्ता पं० लक्ष्मीदास, जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकट है –

> सांगानेर सुथान में मूलनाद्रक थानूँ।
> भट्टारक देवेंद्रकीरति की जिहि आनूँ॥
> पंडित लक्ष्मीदास जी तिन कर इह कीन्हों।
> रहस्य सकलकीरति महा मुनिवर को लीन्हों॥
>
> — खोजविवरण, पृ० २२५।

पद्य में स्थान का पाठ ही अशुद्ध है। वस्तुतः 'मूलनाद्रक' के स्थान पर मूलानाइक शब्द होना चाहिए, तभी स्पष्ट अर्थबोध होगा। सांगानेर सुभ -- शुभ स्थान में 'मूलनाइक' प्रधान स्थान है, जहाँ भट्टारक देवेंद्रकीर्ति की 'आनूँ' आन - आज्ञा - शासन - प्रवर्तता है। इसी प्रकार के भाव कवि ने अपनी अन्य रचनाओं में, सांगानेर की गद्दी - मूलनायक स्थान—पाट के प्रति आदर व्यक्त किया है जैसा कि निम्न पद्यांश से प्रतीत होता है —

> **जा मधे श्री मूलनायक थांनि सामैं भवि जीवां सुखदांनि।**
> **संघमूल जानि गछ सारदा बखांनि गण जु बलातकार जांनौ मन लायकैं।**
> **कुंदकुंद मुनि की सु आमनाय मांहि भये देवेंद्रकीर्त्ति पठप्पतर पायकैं।**
> **जिन सु भये नांम लिखमीदास चतुर विवेकी श्रुत ज्ञान कूं उपाय कैं।**

तात्कालिक भट्टारकों की परंपरा पर दृष्टि केंद्रित करने से विदित होता है कि उन दिनों सांगानेर में भट्टारक देवेंद्रकीर्ति का आध्यात्मिक शासन था, जिनका पट्टाभिषेक सं० १७७० अंबावती - आमेर में हुआ था। ये द्वितीय देवेंद्रकीर्ति थे। इससे पूर्व प्रथम भट्टारक का भी यही नाम था। उपर्युक्त उद्धरणों से पं० लक्ष्मीदास का ग्रंथकर्तृत्व सिद्ध नहीं होता, बल्कि जिस आचार्य की कृति का प्रभाव कवि ने स्वीकार किया है उसकी सूचना मात्र है, आगे के पद्य से और भी बात स्पष्ट हो

जाती, पर अन्वेषक महोदय ने वह महत्वपूर्ण अंश ही छोड़ दिया या उस पर ध्यान देना आवश्यक न समझा हो। सकलकीर्ति[१७] कृत संस्कृत यशोधरचरित्र से कवि ने अपने अनुवाद को पल्लवित किया है। एक और कवि का भी नाम दिया है, वह पद्य ही प्रशस्ति में गायब है जो इस प्रकार है —

पद्मनाभ काईच्छ[१८] कौं, कछु इक अनुसारो।
लीन्ह है इस ग्रंथ मैं, भवियण सुखकारौ॥

इस पद्य में कवि ने पद्मनाभ का ऋण स्वीकार किया है।

सूचित पंक्तियों से स्पष्ट हो गया कि सकलकीर्ति और पद्मनाभ निर्मित संस्कृत कृतियों का भाव ग्रहण कर कविवर ने हिंदीकाव्य का सृजन किया। देवेंद्रकीर्ति का उल्लेख केवल उनके तात्कालिक प्रामुख्य का ही परिचायक है। ग्रंथकर्तृत्व से कोई संबंध नहीं।

अब यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आलोच्य यशोधरचरित्र (हिंदी) का वस्तुतः प्रणेता कौन है? खोजविवरण का निम्न उल्लेख विचारणीय है —

दिल्ली सहर विषै भलो जैसिंघपुर जाणूं।
× × ×
सुंदर नंद षुस्याल ए रह बना यह रानी॥

जब यह कृति पं० लक्ष्मीदास की है तो ऊपर की पंक्तियाँ क्या अर्थ रखती हैं? इनसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदी यशोधरचरित्र का प्रणेता या अनुवादक सुंदर का पुत्र खुशाल है। इसी आशय के भाव खुशाल या खुशालदास ने अपनी अन्य रचनाओं में व्यक्त किए हैं। ये खुशाल सुप्रसिद्ध हिंदी लेखक और कवि पं० खुशालचंद काला ही हैं। ये पं० लक्ष्मीदास के शिष्य थे जैसा कि वे स्वयं अपनी रचनाओं में इन शब्दों में स्वीकार करते हैं—

१७. भट्टारक सकलकीर्ति १५वीं शती के अपभ्रंश, संस्कृत, प्राकृत और देश्य भाषाओं के प्रतिभासंपन्न विद्वान् कृतिकार थे। इनका शिष्यपरिवार वैदुष्यगुण से परिपूर्ण रहा है। अपने प्रभाव और विद्वत्ता के बल पर इन्होंने अपनी स्वतंत्र परंपरा का सूत्रपात किया था। जैन साहित्य की रक्षा और अभिवृद्धि में इनका अनुपम योग रहा है।

१८. पद्मनाभ कायस्थ तोमरवंशीय वीरमदेव के अमात्य कुशराज के आश्रित थे। इन्हीं की प्रेरणा से संस्कृतयशोधरचरित्र की रचना हुई। खोटण आदि कई विद्वानों ने इसका हिंदी अनुवाद किया है।

दोहा

दक्षिण दिसि कूँटमैं, जौ सु कह्यौ आवास।
तिस मंदिर माँही रहै, पंडित लक्ष्मीदास ॥ १ ॥

कवित्त

देव इंद्र कीरति भये जु मूलसंघ भट्टा-
रक कौ पदस्थ जाकौ सोहियतु है।
पूजा रु प्रतिष्ठा करवाई अति सर्भकार
मोहनी सु मूरति लखैं तैं मोहियतु है।
जाहि कै सु गच्छ माँहि पंडित श्रीयजुदास
बाँनी कामधेनु तैं सु ग्यान दोहियतु है।
खिमावान ग्यानवान पंडित विवेकवान
रात्रि द्योस आगम विचार दोहियतु है ॥

× × × ×

ऐसे लिखमीदास ढिग मैं कछु पढ्यौ सुग्यान
पठन कियौ मो बुध्य लौं वै तो ग्यान निधान।
तिनहीं के उपदेस तैं भाषा सार बनाय।
श्रुतसागर ब्रह्मचार कौ सुभ अनुसार सुनाय ॥

—प्रशस्तिसंग्रह, पृष्ठ २५६।

यदि आलोच्य यशोधरचरित्र लक्ष्मीदास की कृति होती तो वह कम से कम अपने लिये 'जी' मानसूचक शब्द का प्रयोग कदापि न करते। राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथसूची, भाग ३, पृष्ठ २१८ पर लक्ष्मीदास रचित यशोधरचरित्र की एक प्रति का उल्लेख है, वह प्रति द्रष्टव्य है। कहीं वहाँ विवरणकार की भूल तो नहीं दोहरा दी गई है।

पंडित खुशालचंद काला प्रणीत यशोधरचरित्र की अनेक प्रतियाँ जयपुर के दिगंबर जैन शानागारों मे वर्तमान हैं। उनमे दो प्रतियाँ ऐसी हैं, जिनमें प्रणयन-काल सं० १७७५ दिया है। इनमे मे एक तो कवि के ही करकमलों द्वारा अंकित है। इसी लेखक की इस रचना की एक ऐसी प्रति भी है जिसका रचनाकाल सं० १७८१ है और प्रतिलिपिकाल सं० १७९६। पुष्पिका इस प्रकार है —

मिती आसोज मासे शुक्लपक्षे तिथि पडिवा वार सनिबासरे संवत् १७९६ छिनवा। श्रे॰ कुशलाजी तरिशष्येन लिपिकृतं पं० खुस्यालचंद श्री घृतघिलोल जी कै देहरै महाराष्ट्रपुर मध्ये परिपूर्णा॥

—रा० जै० शा० सूची भाग ४, पृ० १६१।

शेष प्रतियाँ सं० १७८१ कार्तिक सुदि ६ या ८ की रचना की परिचायिका हैं समस्त प्रतियों का अध्ययन अपेक्षित है।

अभी जो सामग्री उपलब्ध है उससे तो यही प्रमाणित होता है कि आलोच्य यशोधरचरित्र खुशालचंद काला द्वारा रचित है और इन्होंने गुरुभक्ति से प्रेरित होकर लक्ष्मीदास नाम का समावेश अंतिम प्रशस्ति में किया। यदि इसे पं० लक्ष्मीदास की रचना मानें तो पं० खुशालचंद का उल्लेख किस प्रसंग में किया गया?

कतिपय खोजविवरणों में और अन्य इतिहासों में इन्हें सागानेर निवासी बताया गया है, पर इनकी रचनाओं से ही सूचित होता है कि ये दिल्ली – जयसिंहपुरा के निवासी थे और कभी कभी अपने गुरु के पास आकर अधिक समय तक ठहरते थे एवं साहित्यरचना भी करते रहते थे। यही कारण है कि इनकी कृतियों में दोनों स्थानों का उल्लेख आता है। यह कहने की शायद ही आवश्यकता रह जाती है कि उन दिनों सागावती – सागानेर जैनसंस्कृति का अच्छा केंद्र था। तात्कालिक जैन लेखकों ने हिंदी भाषा और साहित्य को अपनी पांडित्यपूर्ण मौलिक एवं अनूदित रचनाओं से परिपुष्ट किया। यह मानना ही पड़ेगा कि चाहे उन दिनों भट्टारकों के प्रति समाज का रुख कैसा ही रहा हो, पर इस परंपरा ने जैन साहित्य और संघ की जो सेवाएँ की हैं—अविस्मरणीय हैं।

पं० खुशालचंद काला की अन्य रचनाओं का परिचय दे देना इसलिये आवश्यक जान पड़ता है कि अनेक खोजविवरणों में इनकी कृतियों का उल्लेख हुआ है और परिचय तो भ्रामक रहना स्वाभाविक ही है क्योंकि अन्वेषक और निरीक्षक परिचय लिखते समय तत्संबंधी अन्य साधनों पर तो दृष्टिपात करते ही नहीं। अन्य रचनाएँ ये हैं—

१. अनंतव्रत कथा

२. व्रतकथाकोश (सं० १७८७ फागुन वदि १३ को पूर्ण किया)

३. पद्मपुराण भाषा (कवि ने इसमें ५३ पद्यों की प्रशस्ति में आत्मवृत्त दिया है)।

४. रविव्रत कथा (सं० १७७५)।

५. उत्तरपुराण (सं० १७९९ मंगसर सुदि १०)।

६. पल्यविधान कथा (सं० १७८७ फागुन वदि १०)।

७. पुष्पांजली कथा।

८. धन्यकुमार चरित्र।

९. ग्रंथ सुभाषित, स्फुट पदादि।

श्रेणिकचरित्र के कर्ता लक्ष्मीदास कोई चांदवाल गोत्रीय पंडित जान

पड़ते हैं। इन्होंने शुभचद्राचार्य कृत संस्कृतचरित्र का भावानुवाद सं० १७१३ में प्रस्तुत किया। ये रणथभौर दुर्ग के निकटस्थ शेरपुर के निवासी थे। दशरथपुत्र सदानंद की प्रेरणा से यह रचा गया। ये लक्ष्मीदास खुशालचंद काला के गुरु से भिन्न ही प्रतीत होते हैं। खोजविवरण में दोनों को एक मान लिया गया है। सं० १७१३ के रचनाकार स० १७८१ तक के मध्यवर्ती काल में मौन रहे—किसी भी प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्ति से अपने आपको बचाए रखें —यह कम समझ में आनेवाली बात है। स्पष्टतः ये लक्ष्मीदास कोई अन्य कवि जान पड़ते हैं।

१४६ मोतीराम[१९] — इनके कवित्तों का एक सग्रह नवोपलब्ध है। परिचय मे बताया गया है कि 'ये भरतपुर के महाराजा बलवंतसिंह के आश्रित थे। स० १६२७ १६५७ तक उनके दरबार मे थे।' यह कथन सही नहीं है। स० १६१० मे ही महाराजा बलवतसिंह की मृत्यु हो चुकी थी। इनका राज्यकाल स० १८८३ - १६१० तक का रहा है। जिस 'व्रजेंद्रविनोद' का उल्लेख परिचयकार ने किया है उसे कवि मोतीराम ने स० १८८५ में बलवतसिंह के लिये रचा था जैसा कि कवि ने स्वय अपनी रचना मे स्वीकार किया है —

> **ठारै सै पिच्यासिया संवत यों पहचांनि।**
> **फाग सुदि पाचैं रवौ कीनौं ग्रंथ बखांनि॥**
>
> —व्रजेंद्रविनोद की अत्यप्रशस्ति।

कवि का विशिष्ट परिचय इस प्रकार है —

ये भरतपुरनिवासी सुप्रसिद्ध कवि रामलाल या राम के पितामह मुद्‌गल गोत्रीय रघुबरदास के पुत्र थे। रणधीरसिंह और तत्पुत्र बलवतसिंह की राज्यसभा के ये कवि थे। तात्कालिक विद्वत्परिषद् के मूर्द्धन्य और भरतपुर की सांस्कृतिक परपरा के प्रतीक श्रीधरानद घासीराम जी इनके और राम कवि के विद्यागुरु थे।

१९. १४६ मोतीराम — इनका परिचय १९३२ - ३४ के खोजविवरण के अतिरिक्त १९१७ - १९ के खोजविवरण स० ११४ पृष्ठ ४९ पर भी है। १९१७ - १९ के खोजविवरण सं० ११४ का संदर्भात्मक उल्लेख १९३२ - ३४ के खोजविवरण सं० १४९ में भी हुआ है। १९१७ - १९ के खोजविवरण के अनुसार जिसका आधार संक्षिप्त विवरण में लिया गया है — मोतीराम संवत् १८८५ के लगभग वर्तमान थे और महाराज बलवतसिंह का राज्यकाल संवत् १८८३ से १९१० तक था। अस्तु, उक्त अशुद्धि का परिहार संक्षिप्त विवरण में हो गया है।—खोजविभाग।

मोतीराम जी की एक अज्ञात रचना 'चंद्रवंश की वंशावली' का संपादन इन पंक्तियों का लेखक कर चुका है। इनकी हस्तलिपि मेरे संग्रह में विद्यमान है।

२०० शिरोमणि[१०] — इनकी रचना 'धर्मसार' का परिचय दिया गया है। रचनाकाल सं० १७५१, आगरा बताया है। जयपुर से प्रकाशित शास्त्र भंडारों की सूची में इसका प्रणयनसमय सं० १७३२ बताते हुए यह पद्य उद्धृत किया है —

> **संवत १७३२ बैशाख मास उज्जल पुनि दीस।**
> **तृतीया अक्षय शनौ समेत भविजन का मंगल सुख देत॥**
>
> —जयपुर सूची भाग ३, पृष्ठ २६।

उर्वशी नाममाला के प्रणेता निश्चित ही इनसे भिन्न है। वे तो माथुर विप्र थे। शाहजहाँ के समय से ही इनका आदर मुगल राज्य में था। सं० १७३७ की प्रतिलिपित 'उर्वशी नाममाला' की एक प्रति मेरे संग्रह में सुरक्षित है।

२०३ शिवलाल — इस कवि को 'कर्मविपाक' का अनुवादक माना गया है, पर अंतिम पुष्पिका (पृष्ठ ३२७) से तो यह प्रतिलिपिकार मात्र मालूम पड़ता है।

२०५ श्रीधरानंद — खोजविवरण में लिखा है — ये भरतपुर के रहने वाले थे और इन्होंने अलंकार विषय पर 'साहित्यसार चिंतामणि' नामक ग्रंथ की रचना की। इन्होंने कुछ राजाओं और महाराजाओं का अपने आश्रयदाता के रूप में उल्लेख किया है।

इनका विशेष परिचय इस प्रकार है —

यह भरतपुराधीश महाराजा सूरजमल्ल की महारानी किशोरी के दानाध्यक्ष श्री मिश्र रामभज के पुत्र थे। इनका जन्मनाम घासीराम था जैसा कि इन्होंने अपनी अन्य संस्कृतरचनाओं में स्वीकार किया है।

१०. २०० शिरोमणि – 'संवत सत्रै से इकावना, नगर आगरे माहि' से तो 'धर्मसार' का रचनाकाल सं० १७५१ ही प्रतीत होता है। फिर सं० १७३२ वाले रचनाकाल का दोहा भी छंद की दृष्टि से कुछ असंगत सा है। लेकिन जब दो रचनाकाल उपलब्ध हो गए हैं तो छानबीन अपेक्षित है।

'उर्वशी नाममाला' के रचयिता शिरोमणि मिश्र निश्चय ही भिन्न हैं जिनकी उक्त पुस्तक का उल्लेख सन् १९०६ - ०८, १९२० - २२ और संवत् २००१ - ०३ के खोजविवरणों में हुआ है। — खोजविभाग।

मिश्रबंधुविनोद भाग २, पृष्ठ ६०७ पर घासीराम जी का उल्लेख करते हुए इनका कविताकाल सं० १८१० और मृत्युकाल सं० १८१५ सूचित किया गया है। समसामयिक अन्यान्य ऐतिहासिक साधनों और कवि द्वारा अपनी रचनाओं में प्रयुक्त संवतों से विनोदकार का कथन अप्रामाणिक ठहरता है। कवि के समय आदि के विषय में अधिक कल्पना की आवश्यकता ही नहीं है, वे अपनी रचनाओं में अपने विषय में अपेक्षित प्रकाश डाल चुके हैं। सं० १८१५ में तो वह जन्मे भी होंगे या नहीं, यह प्रश्न ही है। भरतपुर के कवि रामलाल[21] या राम और संख्या १४६ वाले कवि मोतीराम इनके शिष्य थे।

धरानंद के विद्यागुरु भरतपुर की तात्कालिक संस्कृत पाठशाला के प्रधान अध्यापक पं० परमानंद थे जैसा कि वह स्वयं अपनी रचनाओं – दशविद्या महिम्न स्तोत्र,[22] तत्वप्रकाश,[23] व्याससूत्रार्थचंद्रिका[24] और अनर्घराघव[25] (रचनाकाल सं० १८७२) में उल्लेख कर चुके हैं। भरतपुरनरेश रणजीतसिंह के कुँवर बलदेवसिंह के ये विद्यागुरु नियुक्त किए गए थे। प्रस्तुत खोजविवरण में जो 'साहित्यसार चिंतामणि' का उल्लेख है वह इसी बलदेवसिंह के लिये बनाया गया था। ग्रंथ के प्रत्येक प्रकरण की समाप्ति पर यह पद्य पाया जाता है —

ब्रज चंद सूरज नंद श्रीरणजीतसिंह नरिंद हैं।
बलदेवबुद्धि विलंद ताकों पुत्र सब कंद हैं॥
तिहि प्रीति सौं साहित्यसंग्रहसारचिंतामणिन यौं।
श्रीधरानंद कवीश कृत पिंगल प्रभा करि हित भयौं॥

२१. श्रीमतघासीराम पद पदम सुभग मकरंद।
तिह सिर धरि भाषा रचौं बहु विधि छंद प्रबंध॥
—राम कवि रचित 'छंदसार'।

२२. धरानन्देनाथ प्रवर परमानंद गुरुतो।
विद्यांलब्ध्वा शुद्धां भरतनगरे विप्रलसिते॥
—दशविद्या महिम्नस्तोत्र।

२३. गुरुश्रीपरमानंदो भूमौविजयतेतराम्।
यत्पादाब्जपरागस्य सेवनादस्म्यहं सुखी॥
× × ×
शरारववसुभूम्यब्दे गमन्नाद्दे समासिताम्।
श्रीरामबलपुत्रस्य धरानन्दस्य निर्मितः॥

२४. श्री शंकरं गुरुं नत्वा परमानंद पदद्वयम्।

२५. स्वगुरुं परमानंदं नत्वादरतः स्वकीय पितरौ च।

इतिश्रीसाहित्यसार चिंतामणौ श्री महाराजा ब्रजेंद्र रणजीतसिंह-कुमार बलदेवसिंहहेतवे श्रीघरानंदकवींद्र कृते पिंगलनिरूपण नाम प्रथमा प्रभा पूर्णतामगात्।[२६]

खोजविवरण में पृष्ठ २६ पर जो कहा गया है कि इसमें 'कुछ राजाओं और महाराजाओं का आश्रयदाता के रूप में उल्लेख किया है' यह कथन बिलकुल असत्य है। पूरे ग्रंथ का अंतःपरीक्षण करने पर भी और किसी भी राजा या महाराजा का नाम आश्रयदाता के रूप में दृष्टिगोचर नहीं हुआ। होता भी कैसे? जब कवि भरतपुर के राजा को छोड़कर कहीं गया ही नहीं तो यह कल्पना अन्वेषक महोदय ने न जाने किस आधार पर कर डाली।

कवि ने अपनी रचनाओं मे घासीराम, घरानंद और कवीश या राजकवि के रूप में अपना उल्लेख किया है। इनकी रचनाएँ प्रचुर परिमाण मे मिलनी चाहिए, जो अज्ञात रचनाएँ मेरे अवलोकन मे आई हैं वे इस प्रकार हैं—

दशविद्या महिम्नस्तोत्र, अनर्घराघव वृत्ति, मृच्छकटिकविवरण, मदालसा विवरण, व्याससूत्रार्थचंद्रिका, कर्पूरमंजरीव्याख्या (अपूर्ण), द्वादशमासी आदि। इनकी लिपि सुंदर और सुपाठ्य थी। ऊपर की पंक्तियों मे मैंने कवि की जिन रचनाओं का सूचन किया है वे सब कवि के ही हस्तलेख मे हैं। इन्होंने ५०० सौ से अधिक प्रतिलिपियाँ की होंगी। इनका निजी पुस्तकालय इतना बड़ा था कि शायद ही कोई विषय ऐसा होगा जिसकी पूर्ति संग्रह द्वारा न होती हो।

यहाँ प्रसंगतः सूचित करना आवश्यक जान पड़ता है कि इस नाम के चार और भी विद्वान् हुए हैं, पर विस्तारभय से उनका परिचय देना संभव नहीं[२७]।

२०६ श्रीकृष्ण भट्ट[२८]— इनकी रचना 'शृंगार - रस - माधुरी' का परिचय दिया है जो बूंदावती – बूँदी नरेश राव बुधसिंह के लिये रची गई थी। इतःपूर्व खोजविवरण (सन् १९०९–११, सं० ३०१) मे साभरयुद्ध नामक ग्रंथ

२६. कवि ने रचनाकाल नहीं दिया है, पर 'भरतपुर कविकुसुमांजली' के संपादक श्री कुंजबिहारीलाल गुप्त ने रचनाकाल सं० १८७१ बताया है पर उसका आधार अज्ञात है।

२७. 'पं० घासीराम और उनका साहित्य' शीर्षक मेरा निबंध।

२८. २०६ श्रीकृष्णभट्ट – अथवा कृष्ण कविकलानिधि और लालकलानिधि की कई पुस्तकों के विवरण प्राप्त हुए हैं। अलंकारकलानिधि, नख-शिख, दुर्गाभक्तितरंगिणी, नवसई, रामचंद्रोदय, वृत्तचंद्रिका, शृंगाररस-माधुरी, सांभरयुद्ध आदि कई पुस्तकों का उल्लेख खोजविवरणों में हुआ है,

के रचयिता एक कृष्ण भट्ट का भी उल्लेख है जो जयपुर के महाराजा जयसिंह द्वितीय के आश्रय में रहते थे। पता नहीं वे प्रस्तुत रचयिता ही हैं या अन्य कोई।

— खोजविवरण, पृ० ५६।

सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि 'शृंगारमाधुरी' और 'सांभरयुद्ध' के प्रणेता श्रीकृष्ण भट्ट एक ही व्यक्ति हैं। संस्कृत और देश्य भाषा के यह धुरंधर विद्वान् थे। इन्होंने अपने प्रशस्त वैदुष्य के बल पर राजसभाओं में यशार्जन किया था। बूँदी के राव बुधसिंह ने इनकी प्रतिभा से आकृष्ट होकर ही अपने पास रख लिया था जैसा कि कवि हरिहर भट्ट रचित कलानिधि वंशपरिचयसूचक 'कुलप्रबंध' के निम्न पद्य से फलित होता है —

श्रीकृष्णभट्टस्तनयस्तदासीं श्रीलक्ष्मणाद्यादित लक्षणोऽभूत्।
वशीकृतो येन गुणैरुदारैर्बुंदीपतिः श्रीबुधसिंहभूपः॥

कवि श्रीकृष्ण भट्ट ने बूँदी में रहकर 'विदग्धरसमाधुरी' का भी प्रणयन किया था। दोनों माधुरियों में बुधसिंह की यशोगाथा वर्णित है। इनके अतिरिक्त 'अलंकारकलानिधि' में भी उपर्युक्त नरेश की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है —

राव अनिरुद्धसिंह जू के राव बुद्धसिंह
रावरे सबल दल चलत तमक सों।
लाल कवि तिनके भुवाल पयमाल होत
खूँदे हयमाल खुरताल की झमक सों।
भारे होत बारिधि अंध्यारे धूर - धार उजि-
यारे दामिनी के असि कारे की दमक सों।
गारे परैं नदिन पगारे परैं बारिधिन
नारे परैं अरिन नगारे की धमक सों॥

कविकालिक राजस्थान का राजनयिक वातावरण बहुत ही क्षुब्ध था। संघर्ष की धारा पूरे वेग से बह रही थी। बुधसिंह आम्बेरपति जयसिंह के बहनोई थे तथापि दोनों के पारस्परिक संबंध अच्छे नहीं थे। इसका किंचित् आभास कविवर रचित 'ईश्वरविलास' के सर्ग ७ और १२ से मिलता है। पर जयसिंह विद्यानुरागी और गुणपूजक नरेंद्र थे। वे श्रीकृष्ण भट्ट जैसे प्रतिभासंपन्न कवि को अपनी सभा

जिनके अनुसार ये जयपुरनरेश जयसिंह द्वितीय महाराज कुमार प्रतापसिंह तथा बूँदीनरेश राव राजा बुद्धसिंह के आश्रित थे और संवत् १७६९ के लगभग वर्तमान थे। — खोजविभाग।

का रत्न बनाना चाहते थे, परिणामतः बुद्धसिंह से माँगकर उन्होंने अपनी सभा को गौरवान्वित कर लिया। इसका समर्थन कवि के प्रपौत्र श्री वासुदेव भट्ट द्वारा रचित 'राधाख्यचंद्रिका' के इस दोहे से होता है —

बूँदीपति बुधसिंह सौं लाये मुख सौं जाचि।
रहे आइ आंबेर में, प्रीति रीति बहु भाँति॥

आबेर आने के बाद ही कवि ने 'अलंकारकलानिधि' नामक कृति का प्रणयन किया। प्रत्येक कला की समाप्ति पर यह पंक्ति उल्लिखित है —

इतिश्रीमहाराजाधिराज महाराज श्रीसवाईजयसिंहवचनाऽऽश्रुत-कविकोविदचूडामणि श्रीकृष्ण कविकलानिधिविरचिते अलंकारकला-निधौ रसध्वनि निरूपणम् इत्यादि।

इस कृति का आधार 'काव्यप्रकाश' ही है। परंतु स्मरणीय है कि काव्य-प्रकाश के उद्‌भट टीकाकार कठिन स्थानों के मार्मिक तथ्योद्‌घाटन में जहाँ कृतकार्य न हो सके थे उन स्थानों की विशद् व्याख्या इस कृति की मौलिक विशेषता है।

उदाहरणसहित हावभाव, काव्यलक्षण, शब्दार्थनिरूपण, अर्थव्यंजना, रसलक्षण एवं भेद, ध्वनिनिरूपण, अधम काव्य, शब्द और अर्थ चित्रण, गुण-निरूपण, नवीन एवं प्राचीन काव्यशास्त्रियों के अभिमतों से गुणों के स्वरूप एव भेद-प्रभेद, अलंकारदोष, नायक नायिका भेद आदि का गभीर तथा समीचीन समीक्षण अन्यत्र प्रायः दुर्लभ है।

अपने समय के बहुराजमान्य पडित श्रीकृष्ण के जीवन पर आंशिक प्रकाश हरिहर भट्ट ने डाला है तथापि इनके प्रारंभिक वैयक्तिक काल पर तिमिर का आव रण पड़ा हुआ है। साहित्यिक जीवन के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालनेवाली सामग्री इनकी कृतियों को छोड़ अन्यत्र अप्राप्त है। यों तो इनकी १९ रचनाएँ उपलब्ध की जा चुकी हैं, पर मेरा अनुमान है कि इनका और भी साहित्य मिलना चाहिए। जहाँ जहाँ कविवर रहे हैं वहाँ के प्राचीन ज्ञानागारों में अन्वेषण अपेक्षित है। इन पंक्तियों के लेखक को अनायास ही शोधयात्रा मे इनकी दो महत्वपूर्ण रचनाएँ प्राप्त हो गई थीं। इनमें से एक तो इनके प्रारंभिक साहित्य - रचना-काल पर प्रकाश डालती है। कवि ने अपनी कई रचनाओं मे रचनाकाल सूचित नहीं किया है। यह भी इनके साहित्यिक विकासात्मक अन्वेषण मे बहुत बड़ी बाधा है। अब तो एक ही मार्ग रह जाता है कि इनकी कृतियों की प्राचीन से प्राचीन प्रतियाँ कब तक की उपलब्ध होती हैं, यह अनुसंधान का विषय है। इनकी प्रथम रचना कौन सी है, कहने का साधन नहीं है।

कवि का जन्मकाल अज्ञात है। श्री कंठमणि जी शास्त्री ने अनुमित जन्मकाल सं० १७२५ (उत्तर भारतीय आंध्र (तैलंग) भट्ट वंशवृक्ष) स्थिर किया है और विद्वद्वर श्री मथुरानाथ जी शास्त्री ने 'ईश्वरविलास' की भूमिका, पृष्ठ ५३ में सं० १७४० या ३५ के लगभग माना है। अनुमानतः वे ३० - ३२ वर्ष की अवस्था में बूँदी गए होंगे। द्वितीय अभिमत उपयुक्त प्रतीत होता है। कारण कि मेरे संग्रह में कवि कृत 'हरिनाम मौक्तिकमाला' की एक प्रति सं० १७६६ की जैन मुनि प्रतापविजय द्वारा प्रतिलिपित है। कवि की अद्यावधि प्राप्त रचनाओं की प्रतियों में यही प्राचीनतम ज्ञात होती है। इसकी रचना ३० वर्ष की वय की मानी जाय तो श्री मथुरानाथ जी का अनुमान ठीक बैठता है। संभव है वैदुष्य और यौवन समन्वित व्यक्तित्व ने बूँदीपति को आकृष्ट किया हो। जीवन का माधुर्य तभी तो 'माधुरियों' में प्रवाहित हुआ है।

वृत्तमुक्तावली, पद्यमुक्तावली, सुंदरीस्तवराज, ईश्वरविलास, वेदांतपंचविंशति, अलंकारकलानिधि, सांभरयुद्ध, जाजऊ युद्ध, बहादुरविजय, शृंगाररसमाधुरी, विदग्धरसमाधुरी, उपनिषद् की गद्यात्मक टीकाएँ, रामचंद्रोदय, नखशिख, दुर्गाभक्तितरंगिणी, वृत्तचंद्रिका आदि कवि की यशःकीर्ति को अमर करनेवाली रचनाएँ हैं।

इनके अतिरिक्त एक और गीतिकाव्यविषयक कृति है 'रामगीत'। भारतीय साहित्य में यह अपने ढंग की अनुपम रचना है। इसमें भगवान् राम का शृंगारिक वर्णन है। कहा जाता है कि कवि को इसी कृति पर महाराज जयसिंह द्वारा रामरासाचार्य की उपाधि मिलि थी। सं० १८१२ के आसपास कवि का तिरोभाव हुआ।

२०८ सुखलाल — इनके संबंध में मैं अठारहवें त्रैवार्षिक विवरण के परिमार्जन में लिख चुका हूँ।

२१८ टोडरमल - टुडुर — इनकी कविताओं का परिचय दिया गया है। सं० १६०६ में प्रतिलिपित एक हस्तलिखित गुटके मे कवि टुडुर की स्फुट रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। दोनों व्यक्ति एक ही हैं या भिन्न, यह कहना कठिन होते हुए भी टुडुर के चार छंद उद्धृत कर रहा हूँ —

मुष अरविंदु मुकुंद मुचक्क गहि पडइ प्रघरि सुवचन कहेन।
टुडर सुकवि लषि सुविचषण घली घमउनी समझि करि सयन॥
अपि कमलनीय पट खिर पट पंड कुसुम सषी दीय तेन।
का कहिउ किस्न कहा कहिउ राधिका का कहिउ दुति गई हल लेन॥ १॥

घुमत माल बियाल दिषि बिलि काम पासि भरि करन लि कट्टे।
नाम विसाल विलोचन अक्खुक भामिनी भू भ्रह धनुष्य बयट्ठे॥

टुड्डर सुकवि रस निरस राम हि रामा रमति ज्ञान गुन घट्टे।
इहि कछु कठिन इरम्न तम्न अम्न प हद परि हढ़ दोउ ढग ठट्टे॥ २॥
मिलति भांनु भिटंति भांमिनी बिरह तपति ततषिन घुटी।
मद की फउज फिरति निजु फरकति टुडर सुकवि उरसि अहुटी॥
तन कंपति दंपति आलिंगन कंचुकी मदु कुच विचि फट्टी।
सिव सराफ मन मच्छ हत्थ कइं हइ जावउ कनक कशा कशवटी॥ ३॥
ग्वारिन कन्न वसंत वियापति तुम्ह अनरत मधु प्यारी फत्ते।
टुडर डरइं संवाद सुणि सुंदरि पिक सारंग मद मत्ते॥
विरहलु हार नबलतर-पल्लव वन अपवत अति रत्ते।
निज भुतिखक मनमथराय गढि रषे जत तारब तत्ते॥ ४॥

२२६ विश्वभूषण — खोजविवरण में इनके सबध में लिखा है कि — इन्होंने पद्य म 'सुगंव दशमी बन कथा' की रचना की है। ये शहर गहेली के रहनेवाले थे। अन्य वृत्त अप्राप्त हैं।

सुगंधदशमी कथा की अंतिम प्रशस्ति पृष्ठ ३७० पर अंकित है, उससे तो यही पता चलता है कि यह कृति विश्वभूषण रचित न होकर हेमराज प्रणीत है —

हेमराज कवियन यौं कही विश्वभूषण परकासी सही।

यहाँ 'परकासी' शब्द से इन्हें प्रणेता मानने पर प्राथमिक वाक्य 'वर्द्धमान परकासी यथा' से वर्द्धमान कृत मानने की संभावना खड़ी होगी। विश्वभूषण गद्दीधारी भट्टारक थे और हेमराज पंडित। विश्वभूषण से सुनकर कवि ने इसे अपनी भाषा में रचा है। राजस्थान के जैन शास्त्र भडारों की सूची भाग ४, पृष्ठ २५४ पर हेमराज रचित इस कथा की प्रति का उल्लेख है। अन्य ज्ञानागारों मे भी इसकी कई प्रतियाँ मिलती हैं।

भट्टारक और हेमराज मे कालिक साम्य है। विश्वभूषण अटेर के पाटाध्यक्ष थे। जगद्भूषण इनके गुरु थे। 'राजस्थान के अज्ञात साहित्य वैभव' शीर्षक निबंध में मैंने विश्वभूषण और उनके साहित्य पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

हेमराज अच्छे गद्यकार और कवि थे। सुप्रसिद्ध रूपचंद पाडे इनके गुरु थे। गणितसार, गोमट्टसार, द्रव्यसंग्रह (र० का० १७३१ माघ सुदि १०), पचास्तिकाय, नयचक्र भाषा, प्रवचनसार आदि इनकी कृतियाँ हैं। प्रस्तुत खोजविवरण मे भी इनकी दो रचनाओं का परिचय दिया गया है—सं० ८७। आदिनाथस्तोत्र और भक्तामरस्तोत्र को परिचयकार ने दो भिन्न कृतियाँ माना है, पर वास्तव में दोनों एक ही कृति हैं। आदिनाथस्तोत्र का ही नाम भक्तामरस्तोत्र है।

यहाँ पर एक बात का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि जयपुर से प्रकाशित सूची, भाग ४, पृष्ठ ६५७ पर इसी हेमराज कृत बावनी का उल्लेख है, परंतु

स्मरण रखना चाहिए कि यह कृति इस हेमराज कृत न होकर श्वेतांबर मुनि उपाध्याय हेमराज की है। समाननामा कवि की रचनाओं में ऐसी स्खलनाएँ आमतौर से हो ही जाया करती हैं। प्रत्येक खोजकर्ता से सावधानी की अपेक्षा भी कैसे की जाय, जब महारथियों के थोड़े से प्रमाद से भयंकर भूल ही नहीं हो जाती, प्रत्युत उसकी परंपरा चल जाती है।

२३० वीतराग देव — 'जैन सिद्धांत विषयक रचना 'ग्रंथ सुभाषित' के ये रचयिता खोज में नवोपलब्ध हैं। ग्रंथ की रचना संवत् १७१५ वि० में हुई थी जिसकी प्राप्त प्रति सन् १७९९ ई० की लिखी हुई है।'

सर्वप्रथम यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ग्रंथ सुभाषित जिस भाषा में उपलब्ध हुआ है उसका प्रणेता कोई वीतराग देव नामक व्यक्ति नहीं है। पर वीतराग कथित धार्मिक सिद्धांतों को अभिव्यक्त करनेवाला यह संस्कृत भाषा का संग्रहात्मक ग्रंथ अवश्य है जिसका अनुवाद पं० खुशालचंद काला ने सं० १७९५ में उपस्थित किया। इसका वास्तविक नाम तो 'सुभाषितावली' है। सन् १९२६ - २८ के खोजविवरण में इसका उल्लेख आ चुका है। पाठ तो उस विवरण में भी बहुत ही भ्रष्ट छपा है। खुशालचंद काला के लिये देखें इसी परिमार्जन की सं० १३०।

२३३ यादवराय[२१] (पृष्ठ ६६)—इनका परिचय कराते हुए खोजविवरण के पृष्ठ ६६ पर लिखा गया है कि ये खोज में नवोपलब्ध हैं। ढोला मारवणी नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ के रचयिता हैं। इनका स्थान जैसलमेर था और इन्होंने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना किसी यादवराज हरिराज के लिये की —

२१. २३३ यादवराय – 'ढोलामारू रा दूहा' कुशललाभ का है इसमें संदेह नहीं पर इसका रचनाकाल विवादास्पद है। खोजविवरण सन् १९०० की सं० ४६ पर इसका रचनाकाल सं० १६०७ है ('संवत सोलजम सतोतरई। आषा त्रीज दिवस मन धरई) और खोजविवरण १९१२ - १४ में सं० २३३ पर रचनाकाल संवत् १६१६ है। (संवत सोलसइ सोलोत्तरइं॥ आषा तीज दिवस मनि धरइ'॥)। खोजविवरण सन् १९०१ की सं० ४६ पर भी यह पुस्तक है पर वहाँ इसका रचनाकाल नहीं है।

अस्तु, पुस्तक का रचनाकाल या तो संवत् १६०७ है या संवत् १६१६। संवत् १६१७ रचनाकाल असंगत लगता है। 'संवत सोल सत्योत्तर वरष आषा तीज दिवस मन हरष' से रचनाकाल संवत् १६०७ ही होना चाहिए। पर १९१२ - १४ के खोजविवरण पृष्ठ सं० १८१ के 'विशेष ज्ञातव्य' में यह सिद्ध किया गया है कि सं० १६१६ ही रचनाकाल ठीक है। —खोजविभाग।

यादवराज श्रीहरिराज जोडा तासु कौतुहल काज ।
... ... जोडी जैसलमेर मझार ॥

इस पद्य का अर्थ पृष्ठ १८१ पर इस प्रकार दिया है —

'अर्थात् जादवराज ने श्रीहरिराज के लिये इस ग्रंथ को जोड़ा। जादवराज जैसलमेर के निवासी मालूम होते है जैसा कि वह स्वतः कहते हैं कि ग्रंथ निर्माण वहाँ हुआ — जोडी जैसलमेर मझार।'

उपर्युक्त उद्धृतांश मे सचाई केवल इतनी ही है कि ढोला मारवणी नामक कृति का प्रणयन जैसलमेर मे यादवराज हरिराज के लिये हुआ। शेष वृत्त सर्वथा निराधार ही नहीं बल्कि कपोलकल्पित है। विस्मय की बात तो यह है कि प्रशस्ति के अंत में कर्ता का नाम बहुत ही स्पष्ट है —'वाचक कुशललाभ इम कहई'। इन शब्दों पर न जाने क्यों अन्वेषक और निरीक्षक महोदय का ध्यान नहीं गया ? और यादवराज जो रावल हरिराज (वास्तविक नाम हरराज है) का विशेषण है, को इस कृति का प्रणेता मान लिया गया।

जिसी हरिराज का नाम ऊपर आया है वह और कोई नहीं जैसलमेर के राजकुमार, जो राउल मालदेव जी के पुत्र थे, हैं और यादवराज इनका विशेषण है। जैसलमेर के शासक यदुवशी हैं, यह शायद ही बताने की आवश्यकता हो। हरराज का राज्यकाल स० १६१८–१६३४ तक रहा है। ये लोककथाओं के विशिष्ट अनुरागी थे। इन्हीं के लिये खरतरगच्छीय वाचक कुशललाभ ने वि० स० १६१७ मे जैसलमेर मे 'ढोला मारवणी' का प्रणयन किया। यह कथा 'आनदकाव्यमहोदधि' काव्यमाला के सप्तम गुच्छक में प्रकाशित है जिसकी अंतिम प्रशस्ति का आंशिक भाग यहाँ उद्धृत करना आवश्यक जान पड़ता है —

जादव राउल श्रीहरीराज, जोडी तास कुतुहल काज।
संवत सोल सत्योत्तर वरष, आषातीज दिवस मन हरष।
जोडी जैसलमेर मझार, वाचां सुष पामैं संसार।
चतुर सुगुणइं मन गह गहै, वाचक कुशललाभ इम कहै।

— आनदकाव्यमहोदधि, भाग ७, पृष्ठ ६५।

ढोला मारवणी के प्रणेता ने इसी राजकुमार हरराज के लिये एक और लोककथा का निर्माण किया था जिसका नाम है माधवानलकामकुंदला चौपाई। इसका अंतिम भाग इस प्रकार है —

संवत सोल सतोहतरइ, जसलमेर मझारि।
फागण वदि तेरसि दिवसि, विरची आदितवारि॥

गाहा दूहा चौपई कवित कथा संबंध।
कामकुंदला कामिनि, माधवानल संबंध॥
कुशललाभ वाचक कहइ, सरस चरित्र सुप्रसिद्ध।
राउल माल सु पाटधर, कुमर श्रीहरिराज।
विरचि ए सिणगार रस, तास कुतूहल काज॥

— आनंद काव्यमहोदधि भाग ७, पृष्ठ १८४ - ८५।

कवि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं —

१. तेजसार रास (रचनाकाल स० १६२४, वीरमपुर), २. अगडदत्त रास (र० का० सं० १६२६, वीरमपुर), ३. स्तभन पार्श्व स्त०, ४. नवकार छंद, ५. भवानी छंद, ६. गौडी पार्श्व० छंद तथा ७. श्री पूज्यवाहण गीत।

कवि जैन मुनि था। अतः उसके जैसलमेर के निवासी होने का प्रश्न नहीं उठता, जैसा कि खोजविवरण में इन्हे इस नगर का निवासी बताया है। कुशललाभ लोक-कथा-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् थे। पर अन्य कवियों के समान इन्होंने अपना परिचय किसी भी कृति में विस्तार से नहीं दिया, केवल तेजसार रास की अंतिम प्रशस्ति मे इतना ही सूचित किया है कि ये उपाध्याय अभयचंद या अभयधर्म के शिष्य थे —

श्रीखरतरगछि सहि गुरुराय, गुरु श्रीअभयचंद उवझाय।
सोलहइं चौवीसइं सार, श्रीवीरमपुर नयर मझार॥१४॥
अधीकारइ जिन पूजा तणइं, वाचक कुसललाभ इम भणइं।
जे वाचें नइं जे सांभलइं, तेहनां सहू मनोरथ फलइं॥१५॥

इति श्रीतेजसाररास पूजाविषये संपूर्ण॥ संवत् १७६५ वरषे मास पोसै वदि अमास दिनें गुरुवारे समाप्त। — निज संग्रह की प्रति से।

सोलहवाँ विवरण (सन १९३५ - १९३७)

१०. बनारसी — कविवर बनारसीदास की रचनाओं का परिचय देते हुए वैराग्यपचीसी का भी समावेश उन्हीं की कृतियों में कर दिया गया है। यद्यपि वालिक वैराग्य है। विवरणकार का मन तो इसे सुप्रसिद्ध बनारसी की रचना मानने में झिझकता रहा है, पर विशेष श्रम न कर जैसे कोई विश्लेषक पिंड छुड़ाता है वैसे उसने यह लिखकर संतोष कर लिया कि कुछ भी हो प्रस्तुत बनारसी भी जैनी ही थे। इसका अर्थ तो यही माना जायगा कि यह रचना किसी अन्य बनारसी की है। शोध करने पर भी दूसरे बनारसी का पता न चल सका, चलता भी कैसे ? आश्चर्य तो

इस बात पर है कि पूरी रचना में कहीं भी बनारसी का नाम तक नहीं है, बल्कि इसके विपरीत प्रणेता का नाम कृति में विद्यमान है —

भैया की यह वीनती

— पृष्ठ ६६।

यहाँ भैया शब्द से तात्पर्य है भैया भगवतीदास से, जो कविवर बनारसी के साथी सत्संगी थे। पाँच मित्रों में इनका स्थान तीसरा था।[30] यह आगरा निवासी ओसवाल, हिंदी के अच्छे कवि और गद्यकार थे। इनका साहित्य - रचना - काल सं० १६८७ – १७५५ तक रहा है। नाटक समयसार के अतिरिक्त सं० १७११ में पं० हीराचंद प्रणीत पंचास्तिकाय मे इनका उल्लेख है। जिस प्रकार 'बनारसीविलास' मे बनारसी के ग्रंथों का संकलन किया गया है ठीक उसी प्रकार भैया भगवतीदास की ६७ कृतियों का समह ब्रह्मविलास मे दृष्टिगोचर होता है।

१६ चरणदास[31] — समस्त खोजविवरणों मे प्राप्त ग्रंथों मे इन्होंने अपने आपको शुकदेव जी का शिष्य बताया है। शुकदेव जी में और चरणदास मे कितना कालिक अंतर है, यह बताने की शायद ही आवश्यकता है। ज्ञानापेक्षया वह इनके गुरु थे। स्वामी जी के १०८ शिष्यों में रामस्वरूप भी एक थे। इन्होंने गुरुभक्ति से प्रेरित होकर 'श्रीगुरुभक्तिप्रकाश', नामक स्वामी जी का चरित्र लिखा है। उसमें एक कथा द्वारा बताया गया है कि शुकताल मे चरणदास को शुकदेव जी ने दर्शन दिए थे, तभी से वह इन्हें अपना गुरु मानते हैं (श्रीगुरुभक्तिप्रकाश, पृष्ठ ४२)। चरणदासी संप्रदाय के मुनियों द्वारा रचित जितनी भी कृतियाँ अवलोकन मे आई उन सबमें सर्वप्रथम शुकदेव जी को नमस्कार किया गया है। इस संप्रदाय के साहित्य का अनुशीलन वांछनीय है।

३० गोरखनाथ — इनकी रचनाओं का विवरण दिया गया है जिसमें एक योगमजरी भी है। इसी नाम की एक कृति इन पंक्तियों के लेखक के देखने में आई है — गोरख योगमंजरी। प्रणेता के कथनानुसार यह हठयोगप्रदीपिका का हिंदी अनु-

३०. रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम।
तृतीय भगौतीदास नर, कौरपाल गुण धाम॥

३१. १६ चरणदास – इनका परिचय अनेक खोजविवरणों में आया है, जिसके अनुसार ये सुखदेव के शिष्य थे। सन् १६६१ - ३० के खोजविवरण की अशुद्धि का निराकरण परवर्ती खोजविवरणों—संवत् २००४ - ०६ संख्या ६३ तथा सं० २००७ - ०६ सं० ४१ पर हो गया है। —खोजविभाग।

वाद है, इसे देवमुरारि स्वामी के शिष्य नरोत्तम दास या गिरि ने सं० १८०० में बूँदी में प्रस्तुत किया था। अन्य खोजविवरणों में विचारमाला के प्रणेता अनाथदास के एक मित्र नरोत्तमदास गिरि का उल्लेख मिलता है। अनाथदास ने अपनी रचना में देवमुरारि स्वामी का भी उल्लेख किया है, पर कालिक अंतर दोनों में ७५ वर्षों का है। नहीं कहा जा सकता है कि वह मित्र नरोत्तमदास गिरि ही हैं या कोई अन्य।

३६ **हस्ति**—इनके द्वारा रचित संस्कृत भाषा के ग्रंथ 'वैद्यवल्लभ' के हिंदी अनुवाद का परिचय दो प्रतियों के आधार पर दिया गया है। वंध्याकल्प चौपाई इनकी रचना मानी गई है। इसे भी अनूदित कृति ही बताया गया है। दोनों कृतियों का रचनाकाल अन्वेषक महोदय को प्राप्त न हो सका। अतः परिचय के अंत में लिखा गया—ग्रंथों की भाषा से ये राजस्थानी विदित होते हैं। अन्य परिचय अज्ञात है।

उपर्युक्त विवरण में कवि का नाम ही अपूर्ण दिया है। इनका पूरा नाम है हस्तिरुचि गणि जैसा कि विवरण में दिए गए पाठ से ही सिद्ध है (पृष्ठ १८१)। यह तपागच्छीय रुचि शाखा के यति थे। अठारहवीं शती के पूर्वार्द्ध में इस शाखा के अनुगामी कई कवि और विद्वान् विद्यमान थे। यह असंदिग्ध तथ्य है कि कवि हस्तिरुचि ने अपनी कृति में रचना संवत् नहीं दिया है, पर इसकी कुछ प्राचीन प्रतियाँ गोंडल में प्राप्त हुई हैं और उन्हीं के आधार पर इसका प्रकाशन भी किया गया है। प्राचीन प्रति का अंतिम उल्लेख इस प्रकार है —

श्रीमत्तपागच्छे महोपाध्यायश्रीउदयरुचि शिष्य श्रीहितरुचि गणि शिष्य कवि हस्तिरुचि गणिना रस नयनमुनीन्दुवर्षे संवत् १७२६ वर्षे विरचितोऽयं ग्रंथः।

इससे स्पष्ट हो गया है कि वैद्यवल्लभ की रचना सं० १७२६ में हुई और इसके रचयिता गणि हितरुचि के शिष्य थे।

वैद्यवल्लभ में कविश्री की वर्षों की आयुर्वैदिक साधना संकलित है। दैनिक जीवनोपयोगी प्रयोगों का इसमें अच्छा समावेश किया गया है। यह कृति बनते ही लोकप्रिय हो गई। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि प्रणयन के ठीक दो वर्ष बाद ही अर्थात् सं० १७२८ में किसी मेघ नामक पंडित ने इसपर विवेचनात्मक टीका लिखकर अधिक लोकभोग्य बनाया[३२]। इसके अतिरिक्त हिंदी, राजस्थानी और गुजराती भाषा में

३२. वि० सं० १७२६ वर्षे भाद्रपद मासे सिते पक्षे भट्ट मेघ विरचितः संस्कृत टीका-टिप्पणसहितः संपूर्णः। टीकाकार सनातन धर्मावलंबी था। वह अपने को

इसपर कई व्यक्तियों ने स्तबक और विवेचन लिखकर, अपने ढंग से परिवर्तन-परिवर्द्धन कर इसकी उपयोगिता को स्वीकार किया है। यही कारण है कि सीमित समय में ही इसके कई संस्करण हो गए। इस विवरण में जो पाठ दिए हैं उनका क्रम अन्य प्रतियों से मेल नहीं खाता।

कवि गणि हस्तिरुचि के वैयक्तिक जीवन पर प्रकाश डालनेवाली मौलिक सामग्री का अभाव है, पर इनकी अन्य रचनाओं से पता चलता है कि सं० १७३६ तक तो ये विद्यमान थे जैसा कि सं० १७३६ के इनके रचे उत्तराध्ययन के स्वाध्यायों से सिद्ध है। इनकी एक और प्रारंभिक रचना सं० १७१७, अहमदाबाद की 'चित्रसेन पद्मावती रास' नामक मिलती है। यहाँ स्मरण दिलाना अनिवार्य है कि कवि के गुरु श्रीहितरुचि भी संस्कृत भाषा के विद्वान् और कृतिकार थे। सं० १७०२ (चक्षुर्व्योमर्षिचद्राब्दे) में इन्होंने 'नलचरित्र' की रचना की जिसकी प्रति वाराणसी में रामघाट स्थित जैन भंडार में सुरक्षित है।

वद्याकल्प चौपाई संस्कृत मे कवि हस्तिरुचि ने लिखी हो ऐसा सुना तो नहीं गया, न किसी ज्ञानागार में ही इसकी प्राप्ति हुई है। यद्यपि कवि का नाम अंतिम भाग मे 'कहि कवि हस्ति हरिनो दास' (पृष्ठ १४४) आया है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई वैष्णव कवि रहा होगा। 'हरिनो दास' शब्द ही इसे कृष्णोपासक सिद्ध कर देता है।

८७ रसिक सुंदर—इस कवि के विषय में अन्य खोजविवरण की समालोचना में प्रकाश डाल चुका हूँ। यहाँ केवल इतना ही सूचित करना पर्याप्त होगा कि इनकी एक अज्ञात रचना इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में है जिसका नाम है गोपीप्रेमप्रकाश।

६६ सुंदरदास—इनके द्वारा रचित रामचरित्र का विवरण १६२५ की प्रतिलिपि के आधार पर दिया गया है। मेरे संग्रह मे इसी रामचरित्र की एक प्रति १८वीं शती के गुटके में सुरक्षित है। अतः इससे पूर्व का कविसमय निश्चित है। चरित्रकार ने अपने गुरु कालु का उल्लेख किया है। कहीं यह व्यक्ति वही तो नहीं है जिसका सूचन पंद्रहवें त्रैवार्षिक विवरण सं० १०४ मे हुआ है। यह अन्वेषणीय है।

गौतमगोत्रीय, नंद अवटंकीय बताता है। वंशानुक्रम से वह परम शैव है। प्रपितामह नागर भट्ट, पितामह कृष्ण भट्ट, पिता नीलकंठ थे।

१०२ उदय—इनका उल्लेख कई खोजविवरणों में आया है। प्रकृत विवरणांतर्गत स० १०२ ए० में कृष्णपरीक्षा का परिचय एक खंडित प्रति के आधार पर दिया गया है। मेरे संग्रह में इसकी दो प्रतियाँ हैं। एक खंडित जिसमें प्रारंभ के २१ पद्य नहीं हैं, एक पूर्ण। दोनों हस्तलेखों के आधार पर विवरण में दिए गए पृष्ठ २६७ के पाठ को मिलाने पर पर्याप्त पाठांतर मिले और यह भी अनुभव हुआ कि सं० १०२ बी० में जो कृष्णप्रतीत परीक्षा का आदि भाग दिया है वह सं० १०२ ए० का ही प्रारंभिक भाग है और जो स० १०२ ए० का अंतिम भाग दिया है वह इस कृति का अंश न होकर दामोदरलीला का अंत्य भाग है, जो इसी कवि उदय की स्वतंत्र कृति है। तात्पर्य कृष्णपरीक्षा और कृष्णप्रतीतपरीक्षा,[33] जिन्हें अन्वेषक ने दो भिन्न कृतियाँ माना है, वस्तुतः दोनों एक ही हैं।

कवि की दो अज्ञात रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं, जिनका उल्लेख अद्यावधि प्रकाशित खोजविवरण एव हिंदीसाहित्य के किसी भी इतिहास में नहीं मिलता। मेरा तात्पर्य 'चंद्रावलीचरित्र' और सुजान सवत समे' से है। इन कृतियों से विदित होता है कि कवि उदय ने राधाकृष्ण के माध्यम से केवल ब्रजरीति के ही यशोगान नहीं गाए अपितु इतिहास के प्रति भी उनके हृदय मे अनुराग था। 'सुजान संवत समे' में कवि ने भरतपुरनरेश सूर्यमल्ल जी जाट का गुणगान करते हुए तात्कालिक ब्रज की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति का सुदर चित्र खींचा है। उस समय के इतिहास पर भी इससे प्रकाश पड़ता है। कृति का रचनासमय सं० १८४५ कार्तिक पूर्णिमा है।

कवि के सबध मे विस्तार से अठारहवें खोजविवरण के परिमार्जन में लिखा गया है।

१०५ वीरभद्र—इनकी रचना 'बुढ़िया लीला' का विवरण देते हुए अन्य परिचय अप्राप्त होने की सूचना दी गई है।

वीरभद्र की बाललीला या ब्रजलीला भी उपलब्ध है। सरस्वती भवन, उदयपुर में इसकी सं० १८७६ फाल्गुन सुदि १० गुरुवार की लिखी ६० पद्यात्मक एक प्रति विद्यमान है। इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में भी ७५ पद्यों की यह लीला स० १८२४ की प्रतिलिपित है। मिश्रबंधुविनोद भाग २, पृष्ठ ६४५ पर भी वीरभद्र का उल्लेख है, जिसका अनुमित समय सं० १८६४ से पूर्व का स्थिर किया है।

३३. इति श्रीकृष्णजू की प्रीतपरीच्या संपूर्ण। शुभं भवतु। लिषनार्थं लालाहरप्रसाद मुस्दी घर वैरनगर मध्ये, पठनार्थ राजाजी दरीयावसींघजी के वास्ते पढ़ै तिनकूं राम राम बंचना। मिती भाद्रव कृष्णा ११ सनिचर वार सं० १६१८ के रामदास वैसनों की पोथी सों लिखी। पत्र १५।

उभय लीला गायक वीरभद्र, विषयसाम्य को देखते हुए तो एक ही प्रतीत होते हैं। ये परम वैष्णव थे। इनकी एक और संस्कृत भाषा की सप्रदायमूलक कृति भी प्राप्त है। यद्यपि कृति का निरीक्षण मैंने नहीं किया है, पर इसका अंतिम उल्लेख इस प्रकार प्राप्त हुआ है —

इति श्रीवैष्णवभजनसिद्धान्ते सारसंग्रहे वीरभद्रकृते पाखंडदलन संपूर्णं।

सन् १६२६ - २८ के त्रैवार्षिक खोजविवरण में भी एक वीरभद्र का उल्लेख आया है, वह सभवतः इनसे कोई भिन्न है। रहा प्रश्न इनके समय का, जब तक कोई इनकी सं० १८२४ के पूर्व की प्रति उपलब्ध नहीं हो जाती तब तक स० १८२४ के पूर्व तो इनका समय स्वतः सिद्ध है ही।

अठारहवाँ विवरण (सन् १६४१ - १६४३)

४ अभयसोम — इनकी 'मानतुग - मानवती चउपई' (रचनाकाल १७२०) का परिचय देकर इतना ही सूचित किया है — इसके अतिरिक्त इनका और कोई वृत्त ज्ञात नहीं।

विवरण में चउपई का रचनाकाल इस प्रकार दिया है —

संवत सतरह वीस इधु सोम सुंदर प्रसारइ।
अभय सोम इणि परि कहइ ... ..।

— खोजविवरण, पृष्ठ १७४।

जब कि अन्य प्राप्त प्रतियों में इसका प्रणयनसमय स० १७२७ आषाढ़ सुदि २ गुरुवार बताया गया है —

संवत सतरै सतवीसै धुरै सुदि आसाढ़ बीज दिनै गुरइ।
खरतर सहगुरु जिणचंद जयकरु तेहनै राजै सोहग सुंदरु।
सुंदरु सोमसुंदर प्रसादै अभयसोम इणि परि कहै।

— जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृष्ठ ११६७।

ज्ञात होता है कि विवरणकार ने कुछ पाठ छोड़ दिए हैं। मुद्रित अंश भी शुद्ध नहीं है। जहाँ 'प्रसारइ' छपा है वहाँ 'प्रसादइ' पाठ होना चाहिए था। यदि विवरण पूरा लिया जाता तो कवि के गुरु का नाम भी मिल ही जाता। लोक - कथा - साहित्य की दृष्टि से यह चउपई सरस रचना है। विवरणकार ने विशेष परिचय देते हुए लिखा है — 'मानवती ने श्रावकाचार विहित आठों कर्मों का भली भाँति आचरण किया था।' वास्तविक बात तो यह है कि मानवती ने उक्त

श्रावकाचार को अपने जीवन में स्थान देकर मोक्षलाभ किया होगा। 'श्रावकाचार विहित आठों कर्मों का आचरण' वाक्य ही भ्रामक है।

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट हो गया कि अभयसोम खरतरगच्छीय आचार्य श्रीजिनचंद्रसूरि के प्रशिष्य और सोमसुंदर के अंतेवासी थे और सं० १७२७ में उन्होंने सूचित चउपई का सृजन किया। ये अच्छे कवि थे इनकी अन्य रचनाएँ ये हैं —

१. वैदर्भी चौपाई (र० का० सं० १७११ चैत्री पूर्णिमा), २. विक्रमादित्य खापडिया चौ० (र० का सं० १७२३ सिरोही), ३. विक्रमादित्य लीलावती चौ० (र० का० सं० १७२४), ४. वस्तुपाल तेजपाल रास (र० का० सं० १७१६ श्रावण) तथा ५. विवाहपडल स्तबक।

प्राप्त कृतियों के आधार पर इनका साहित्य - साधना काल सं० १७११ - १७३६ है।

११ आनंदघन — इनकी रचना चौबीसी का परिचय देकर केवल इतना ही लिखा गया है कि 'यह राजस्थान के रहनेवाले थे।'

जैन समाज मे यह महात्मा बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। इनकी आध्यात्मिक भावभूमि की रचनाएँ रुचिशील जैनियों के कंठ में सदा विराजमान रहती आई हैं। आज तक प्राप्त चौबीसियों में जितना आदर इसे मिला है और जितनी जैनत्व की झाँकी इससे मिलती रही है, वह औरों मे दुर्लभ ही है।

ये कहाँ के निवासी थे, यह जानने का प्रमाणिक साधन तो प्राप्त नहीं है, पर कहा जाता है कि ये अधिकतर मेदिनीपुर — मेड़ता में रहे हैं। वही इनकी साधनाभूमि मानी जाती रही है। इनके संबंध में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। उनका सार इतना ही है कि ये उच्च प्रकार के योगी और परम साधक संत थे। ज्ञान और क्रिया का इनके जीवन में अद्भुत समन्वय था। जैन समाज के इन मर्मी कवि की रचनाएँ सभी संप्रदायों के साधु मुनि प्रेम से गाते हैं। इनकी दूसरी महत्वपूर्ण रचना है — बहुत्तरी। इसमें कबीर के समान समन्वयमूलक उच्च विचार व्यक्त हुए हैं। 'राम कहो रहमान कहो' इनकी अमर कृति है। इनका पूर्वावस्था का नाम लाभानद बताया जाता है। जैन समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् और कवि उपाध्याय यशोविजय जी इन्हें आदर्श पुरुष मानते थे। जिस चौबीसी का उल्लेख प्रस्तुत खोजविवरण में किया गया है, उसके २२ स्तवनों के रचयिता तो आनन्दघन जी स्वयं हैं और शेष दो के प्रणेता प्रसिद्ध योगी और इनके साहित्य के समर्थ विवेचक श्रीमद् ज्ञानसार जी हैं। कवि की भावपूर्ण रचनाओं को सर्वसाधारण के लिये बोधगम्य बनाने में इनका सहयोग अधिक रहा है।

१२ आलम — विवरण में उल्लेख है कि आलम और शेख के क्रमशः २२६ एवं ४५ कवित्त सवैया आदि मिले हैं। इनका समय लगभग सं० १७५३ बताया है। मेरे निजी साहित्यसंग्रह में भी इन दोनों के ४०० के लगभग कवित्त सवैया संगृहीत हैं। इनमें कितने ज्ञात और कितने अज्ञात हैं, कहने का साधन सामने नहीं है। जब तक इनकी स्फुट कविताओं का पूरा संग्रह प्रकाशित न हो जाय तब तक क्या कहा जाय ! शायद ही हिंदी राजस्थानी काव्य का कोई संकलन ऐसा मिलेगा जिसमें इनकी कविता को स्थान न मिला हो। १८वीं शती के ६ काव्यसंग्रह मेरे पास सुरक्षित हैं और उन सभी में दोनों की कविताएँ हैं।

१५ उदय — टिप्पणीकार ने 'ककावली' या 'ककाबत्तीसी' को उदय की रचना बताते हुए इसका रचनाकाल सं० १७२५ माना है और इन्हें उदयपुर का निवासी भी बताया है।

उपर्युक्त कथन में सत्यांश केवल इतना ही है कि इसका प्रणयनसमय सं० १७२५ है। विवरण लेनेवाले महोदय के प्रमाद के कारण टिप्पणीकार भी भ्रमित हो गया है। मुद्रित 'ककावली' की दो प्रतियाँ मेरे संग्रह में हैं। प्रथम तो विवरण का उद्धरण देना आवश्यक है —

> **सतरे से पंच बिसमें संवत कीयो बखांण।**
> **उदेपुर उदय कीयो मुनि महिमा हित जांण।**
>
> — खोजविवरण, पृष्ठ १८७।

मेरे संग्रह की प्रति का अंतिम पाठ —

> **सतरसह पचीसमई समत कियउ बपांण।**
> **उदयपुर उद्यम कियौ मुनि महेश हित जांण।**

जैन गूर्जर कविओ, भाग प्रथम, पृष्ठ १३० पर भी यही पाठ पाया जाता है। इससे स्पष्ट हो गया कि यह रचना कवि उदय की न होकर मुनि महेश की है। वह जैन मुनि थे, उदयपुर के निवासी नहीं थे, प्रत्युत कुछ काल के लिये रहे अवश्य होंगे। जैन मुनि कहीं भी स्थायी निवास नहीं किया करते।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से विदित होता है कि विवरणकार ने 'उद्यम' को उदय पढ़ लिया और 'महेश' को महिमा। थोड़ी भूल ने क्या गजब कर दिया।

विवरणोद्धृत सं० १६ (पृष्ठ ४७) 'दोहावली' के रचयिता 'उदैराज' को भी विवरणकार ने 'उदय' मानने की संभावना प्रकट की है, जो समुचित नहीं जान पड़ती। मूलं नास्ति कुतः शाखा ?

१७ उदैराज — 'उदयबावनी', जो अपूर्ण ही उपलब्ध हुई है,

का विवरण देते हुए, विवरणग्रंथ में, रचनाकाल सं० १६७६ बताया है। इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में 'बावनी' की पूर्ण प्रति विद्यमान है। इस कृति का मूल नाम विवरण में पृष्ठ १८६ पर उद्धृत पद्यांश में 'गुणबावनी' स्पष्ट है—

उदैराज तेथ गुणबावनी संपूरण कीधी तरै

'गुणबावनी' के ५४ और ५५ संख्यक पद्यों में कवि ने इन शब्दों में स्वपरिचय दिया है—

खरौ नाम गुरुराज खरो मत एक खरतर।
खरौ धर्म निरारंभ खरउ पाखंड खरउ कर।
× × ×
सद्गुरु भाव हरषचो आंण वांण सिर धरि धरइ।
जांजल अधर उदयराज कहि श्रीभद्रसार समरण करइ।

उपर्युक्त पद्य और विवरण के पृष्ठ १८६ पर मुद्रित पाठ से सिद्ध है कि यह कवि उदैराज या उदयराज खरतरगच्छीय भावहर्ष के प्रशिष्य और चंदनमलयागिरि कथा के प्रणेता एवं सिद्ध कवि भद्रसार के शिष्य थे। सं० १६७६ वैशाख सुदि, बबेरा में 'गुणबावनी' पूर्ण हुई।

खोजविवरण में मुद्रित पाठ बहुत ही अशुद्ध है। प्राथमिक भाग में 'ओंकाराय नमो' के स्थान पर 'आकेराय नमः' छपा है। और अशुद्धियों की उपेक्षा की भी जा सकती है, पर रचयिता के गुरु के नाम की अशुद्धता खलनेवाली है। जैसे 'भद्रसार पयपइ' के स्थान पर 'भटसार पयंपइ' का छपना क्षम्य नहीं कहा जा सकता।

श्री अगरचंद जी नाहटा द्वारा संपादित 'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज', भाग २, पृष्ठ १४२ पर एक पद्य उद्धृत है जिससे पता चलता है कि कवि के पिता भद्रसार, माता हरषा, भ्राता सूरचंद, मित्र रत्नाकर, निवासस्थान जोधपुर, स्वामी उदयसिंह, पत्नी पुरबणी और पुत्र सूदन थे।

कवि की अन्य रचना 'भजन छत्तीसी' (रचनाकाल १६६७ फागुन वदि २ शुक्रवार, मांडा) से सिद्ध है कि इनका जन्म सं० १६३५ में हुआ था, क्योंकि कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि ३६वें वर्ष में यह कृति, भजन छत्तीसी, लिखी।

राजस्थान के प्राचीन ग्रंथ भंडारों में स्फुट पद्यों के कई संकलन पाए जाते हैं, जिनमें अनेक कवियों के विविध विषयक दोहे, कवित्त, छंदों का बाहुल्य रहता है। इनमें शायद ही कोई ऐसा संकलन मिलेगा जिसमें उदयराज कृत औपदेशिक या नीतिविषयक छंद न मिलते हों। राजस्थान में तो इनके दोहे जनकंठ का शृंगार बने हुए हैं। मेरे संग्रह से कतिपय दोहे यहाँ उद्धृत हैं—

ओं नमो

अथ श्रीकविराज उदैराज कृत दोहा लिष्यते

सरस्वती सुप्रसन्न हुई दि मो अकल वांण।
देवि दधसुर वुरि करि अरथ अनाहत आंण॥ १॥
नमो सारदा वांण दे ज्युं बंधु गुणमाल।
जिण वांणी मन रीझीयै अकल दुजी आल॥ २॥
गवरीनंदन गजबदन सिधि बुधि दे सुंडाल।
विमल विनायक वाणि दे ज्युं गुंथुं गुणमाल॥ ३॥
निरमाया निरभव निडर निराकार निरवांण।
निरालंब निगुंण निचल सो परमेस्वर जांण॥ ४॥
महिरवांण मादर पिदर रहिता गुण रहिमांण।
माथै ईश्वर को नहीं सो परमेश्वर जांण॥ ५॥
जगत उधारण जगतगुरु जगकर्ता जगनाथ।
जगबंधव जगदीस सोइ रजिक मीच जिण हाथ॥ ६॥
षट्काया रषवाल गुरु लिव षट्भाषा लीण।
तत्व ग्रहै तत्व उपदिसै गुण से तत्त प्रवीण॥ ७॥
महा निरम्मल आतमा जन सत निरमल जांण।
तन मन त मान जोयन मा से महातमा वषांण॥ ८॥
काम क्रोध माया मछरां मोहि लोभ मन मांहि।
जीतां जग जीतो 'उदै' जीते जती कहाय॥ ९॥
जदै जोगी लै वहै बिंदे जांणी न देह।
तृष्ना माया कलुषता तजै सु जोगी देह॥१०॥
अनल उरद्धे ले रहै मन रष्यै लिव मांहि।
छंवै बिंदन चालरै सो मरै न बुड्ढा होय॥११॥
अनल बिंद थंमै 'उदै' मींट न आंणे कोय।
चित रष्ये रम्रिणि में मरे न बुड्ढा होय॥१२॥
आछा खावै सुख सुयै आछा पहिरै सोइ।
अति आछी रमणी रहै सो मरै न बुड्ढा होय॥१३॥
गंध सुरत भाषा रहत रहत जोति रति प्राण।
मन चित चेतन रहत तबहुँ मीच भइ जाण॥१४॥

अविन्यासी गुणनुं लिवै जाणे संज्ञा नास।
सर्वग्राही हुइ रहै लोक दास सन्यास ॥१५॥
मन आया देष्या नहीं फिरै अपूठा आन।
भागा मन भग सुं 'उदै' तजहुँ भया भगवान ॥१६॥
दत्त कहै पुत्ता सुंणो दे कम मन वच कांन।
भगवां कीन्हां क्यु नहीं भग छूटा भगवान ॥१७॥
जेथ तेथ देषै विष्णु विष्णु भूत भैरव।
सब ही जागै विष्णु कौ जाणै सो वैष्णव ॥१८॥
माला तिलक न संग्रह्या मुंड मुंडाया नांहि।
यूं जांणे वैष्णव 'उदै' विष्णु सबाही मांहि ॥१९॥
कुलरी घररी बंसरी जिण मुंडी सहकार।
मन मुंडे मोडा हुआ सो मोडा संसार ॥२०॥
मुंडत होणों कठन छै मुंडावणो असन्न।
से मुंडन 'उदै' कहै ज्यांणा मुंडया मन ॥२१॥
पिंडाजिण उत्पातको पिंड प्रगट्टै ज्यांहि।
सो पिंडत 'उदो' कहै ध्ये प्रभात कल मांहि ॥२२॥
समता रमता रहै भमता देश विदेश।
करता डर धरता 'उदै' दिल सौ दरवेश ॥२३॥
दरवेसी दुनीयान में रज्जा रज्ज सरेस।
को कहि कैसे घरगै लगै द्राह दीये दरवेस ॥२४॥
भिक्षा लै भिक्षा दीये भूषा आदिम देषि।
सिष्या दे सिक्षान कों ··· ··· ··· ··· ॥

आगे के पत्र गायब हैं।

विवरण मे संख्या १६ वाले उदयराज भी 'गुणबावनी' वाले ही प्रतीत होते हैं।

वैद्यविरहिणीप्रबंध भी एक कृति है जिसके रचयिता उदयराज हैं, पर स्थान, रचनाकाल आदि के अभाव मे कहना कठिन है कि यह रचना किस उदयराज से संबद्ध है। किसी सूरजमल को संबोधित कर उदयराज ने पर्याप्त पद्य लिखे हैं।

२० कनकसोम — इनकी 'आषाढ़ाभूत चौपाई' का विवरण दो प्रतियों के आधार पर दिया गया है। इसका रचनाकाल सं० १६३८ विजयादशमी

है। 'रचयिता का नाम केवल ग्रंथात में मिलता है। इसके अतिरिक्त चरित्र कुछ भी ज्ञात नहीं' — खोजविवरण, पृष्ठ ४८।

कविगुरु का नाम तो रचना के प्राथमिक भाग में ही उल्लिखित है—

माणिकसागर मुझ गुरुनि तणइ चरणे नामु सीस

अन्वेषक ने पाठ कुछ ऐसे ढंग से प्रतिलिपित किया है कि जब तक ठीक पदच्छेद न किया जाय तब तक कुछ भी समझ मे नहीं आ सकता। कविपरिचय की सामान्य सामग्री कृति मे उपलब्ध होने हुए भी भ्रष्ट पाठसयोजन से विवरणकार को परिचयविषयक असमर्थता प्रकट करनी पड़ी।

यहाँ प्रसंगतः स्पष्टीकरण आवश्यक जान पड़ता है कि आषाढ़ाभूति चौपाई की जितनी भी प्रतियाँ अवलोकन में आई हैं उनमे बहुत कम ऐसी हैं जो पाठभेद की दृष्टि से पारस्परिक साम्य रखती हों। उदाहरणार्थ खोजविवरण की दो प्रतियों में पाठवैषम्य है। जैन गूर्जर कविओ, भाग १, पृष्ठ १४६ पर प्रकाशित पाठ मे भी भिन्नत्व है। मेरे सग्रह मे इस चौपाई की जो प्रति है उसमे इसे धमाल कहा गया है। पाठविषयक भिन्नत्व अधिकाशतः प्राथमिक भाग में ही है। अत भाग लगभग सबमे समान है।

कविवर कनकसोम अमसमाणिक्य के शिष्य थे। इनकी विविध रचनाओं से विदित होता है कि ये बहुपठित स्थविर थे। इनके वैयक्तिक जीवन पर प्रकाश डालनेवाली सामग्री नहीं के समान है पर साहित्यिक कृतियों से ज्ञात होता है कि ये सं० १६१३ से ही संयम के साथ सरस्वती की साधना मे लीन हो गए थे और यह क्रम सं० १६५५ तक चलता रहा। इनकी अन्य रचनाएँ ये है —

१. पंचस्तवावचूरि (ले० का० सं० १६१५), २. जइतपद वेलि (र० का० सं० १६२५, आगरा), ३. श्री जिनचंद्रसूरि गीत (ले० का० १६२-), ४. जिनपाल जिन रक्षित रास (र० का० १६३२), ५. कालिकाचार्य कथा (र० का० १६३२, जैसलमेर), ६. हरिकेशी सधि (र० का० १६४० कार्तिक, वैराट), ७. आर्द्रकुमार चौपाई (र० का० १६४४, अमरसर), ८. मगलकलश रास (र० का० १६४६, मुलतान) तथा ९. थावच्चा सुकोशल चरित्र (र० का० १६५५, नागौर)।

५१ खींवड़ा — इनके दोहे देकर अस्तित्व - समय - विषयक अनभिज्ञता प्रकट की है। वस्तुतः लोकसाहित्य, जो जनकंठ का अलंकार होता है, का मूल खोजना कठिन कार्य है। खींवड़े के दोहों की परंपरा राजस्थान में लगभग तीन शताब्दी से चली आ रही है। १७वीं शती की लिखित प्रतियों में इनके दोहे मिलते हैं। राजस्थान की प्रसिद्ध लोककथा खींवे आभल में इन दोहों का

खूब उपयोग हुआ है। अतः ये दोहे या सोरठे प्राचीन लोकसाहित्य की निधि हैं। प्रसंगतः यहाँ स्पष्टीकरण आवश्यक है कि राजस्थान मे प्रचलित अधिकतर दोहे या सोरठे जिन व्यक्तियों के नाम से प्रसिद्ध हैं वे व्यक्ति उनके रचयिता प्रायः नहीं रहे हैं जैसे कि 'राजिया रा दोहा' के प्रणेता राजिया स्वयं न होकर कृपाराम थे। इन्होंने अपने सेवक राजिया को सबोधित कर ये दोहे लिखे हैं। आलोच्य खोजविवरण के पृष्ठ ५१ पर सख्या २८ मे इन दोहों का रचयिता राजिया को माना है। इसी सख्या २८ में किसनिया को भी दोहों का प्रणेता माना है, जो विचारणीय है। असंभव नहीं, खोजविवरण के खींवडे के दोहे भी किसी कवि ने इनको लक्षित कर लिखे हों।

४६ गजानंद — इनकी रचना नेमनाथ की धमाल का उल्लेख कर समय की अनभिज्ञता प्रकट की है। निश्चित समय तो नहीं बताया जा सकता पर यही रचना स० १७५६ के एक गुटके में प्रतिलिपित है। अतः ये १७६३ के पूर्व के कवि तो हैं ही।

५६ जनगोपाल[३४] —इनका परिचय विवरण अश सख्या ८ पर देते हुए बताया गया है कि 'इनका और वृत्त नहीं मिलता।' इन्होंने स० १७५५ में रास-पचाध्यायी की रचना की।

एक जनगोपाल संत दादूजी के शिष्य थे पर समय का बहुत अतर है। ये मूलतः फतेहपुर सीकरी के निवासी महाजन थे। दीक्षित होने के बाद राहोरी में रहने लगे थे। प्रह्लादचरित्र, ध्रुवचरित्र, भर्तृहरिचरित्र, मोहविवेक, जन्मलीला, गुरुदत्तलीला और काया प्राण-सवाद आदि के प्रणेता थे। रासपचाध्यायी के यही रचयिता हों यह समय को देखते हुए कम संभव जान पड़ता है।

८४ जेठुवा — जेठुवा के १३ सोरठों का उल्लेख किया है। रचयिता के विषय में अनभिज्ञता प्रकट की है। वस्तुतः इन सोरठों का प्रणेता जेठुवा नहीं है अपितु ऊजली नामक एक स्त्री है जो जेठुवा की प्रेयसी थी। इनकी स्नेहकथा गुजरात व सौराष्ट्र में अति प्रसिद्ध रही है।

३४. ५६ जनगोपाल – इनका परिचय अनेक खोजविवरणों (सन् १९०० की सं० २१, २२, २८; १९०६ की सं० १७५; १९२१ की सं० १८०; १९२९ की सं० १२३; १९४१ की सं० ७४; संवत् २००७ की सं० ३१ और ४७) में आया है जिसके अनुसार ये दादू दयाल के शिष्य थे और सं० १६५७ के लगभग वर्तमान थे। संवत् १७२९ वाले रासपंचाध्यायी के रचयिता जन-गोपाल इनसे भिन्न हैं। — खोजविभाग।

जोधपुर से प्रकाशित 'परंपरा' के एक विशेषांक में इनके ११५ सोरठे अर्थसहित मुद्रित हो चुके हैं। सोरठों पर किंवदंतियों का इतना अंबार चढ़ा हुआ है कि सत्य-शोधन एक समस्या ही है।

६५ दयादेव -- इनके कवित्त दिए हैं। समय का ठीक पता नहीं है। परंतु इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में दयादेव रचित १८ कवित्त हैं। प्रतिलिपिकाल सं० १७०६ है। अतः इस काल तक कवि का अस्तित्व असंदिग्ध है। दयादेव के कतिपय कवित्त मेरे संग्रह में हैं। एक उदाहरण —

रति बिपरीति करत हरि राधिका आसन आन समरत्थिय।
कहि दयादेव तहां ती कपोलनि सैं दस लील धार समरत्थिय॥
बेनी उलट रही मुख ऊपर चंपकमाल लस्थल छल पच्छीय।
कनक जंजीर सौं डग हि झुम्मत मानहुँ मत्त मदन को हत्थिय॥

—१८वीं शती के एक हजारे से उद्धृत।

१६६ मान मुनि[35] — मानबत्तीसी, सगमबत्तीसी, सयोगबत्तीसी या सयोगद्वात्रिंशिका ये सब एक ही रचना के नाम हैं। संयोग शृंगार का वर्णन प्रस्तुत करनेवाली इस कृति के प्रणेता हैं मुनि मान जी। खोजविवरणकार ने कहा है कि इनका अन्य परिचय नहीं मिलता। इन पंक्तियों के लेखक की मान्यता है कि यह कृति उन्हीं मान मुनि की रचना होनी चाहिए जो बिहारी सतसई-टीका के प्रणेता थे और जिनका संबंध विजयगच्छ से था। क्योंकि ऐसी रसिक कृति का प्रणयन उन जैसे व्यक्ति के लिये ही संभव था। ये एक प्रकार से राजाश्रित से थे। इसी समय में एक और मान हुए हैं जिनकी रचना कविविनोद या प्रमोद नाम से मिलती है। कुछ लोगों का मानना है कि मानबत्तीसी इसी मान कृत होनी चाहिए। पर पुष्ट प्रमाण का अभाव है।

खोजविवरण में जिस प्रति से परिचय दिया गया है उसमें तीन उन्माद हैं,

३५. १६६ मान मुनि — मान मुनि या मुनि मान का परिचय खोजविवरण-सन् १९२० सं० १०१; १९२३, सं० १३१; १९३५ सं० ६६; १९४१ सं० १६१ और संवत् २००१ सं० २६१ पर आया है। सन् १९४१ की खोज तक तो इनका परिचय उपलब्ध नहीं हुआ था पर संवत् २००१ - ०३ की खोज में इनका परिचय मिला है जिसके अनुसार ये जैन थे, सुमतिमेर के शिष्य और बीकानेर निवासी। इनका वर्तमान काल संवत् १७३१ था। खोज में अब तक इनकी ४ पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं — संयोगबत्तीसी, कविविनोद, मानबत्तीसी और कविप्रमोदरस। —खोजविभाग।

पर मेरे संग्रह में इसकी चार प्रतियाँ[३९] हैं उन सबमे चार उन्माद (प्रकरण) हैं। खोज-विवरणकार ने शिकायत की है कि प्रथम उन्माद कहाँ समाप्त होता है पता नहीं चलता। जहाँ गूढ़ रूप वर्णन की समाप्ति है वहाँ प्रथम उन्माद समाप्त होता है। यहाँ सूचित कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि सभी प्रतियों में पाठ समान रूप से नहीं मिलता।

मान मुनि के समय में उदयपुर विजयगच्छ का अच्छा केंद्र था। राजविलास जैसी ऐतिहासिक कृति का निर्माण इन्हीं मान मुनि द्वारा हुआ था। यद्यपि यह कृति ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित है, पर आज भी एक अच्छे संस्करण की आवश्यकता है जिसमें इस कृति के ऐतिहासिक मूल्यांकन के साथ इनकी अन्य कृतियों की तुलना की जा सके। उदयपुर और निकटवर्ती प्रदेश में मान का पर्याप्त साहित्य उपलब्ध होता है। तात्कालिक प्रतियाँ मिलती हैं, इनके स्फुट कवित्तादि सैकड़ों की संख्या में वर्तमान हैं। समय की माँग है कि इन सभी का सामूहिक प्रकाशन हो। मान के वर्तमान उत्तराधिकारी के पास इनके संबंध में जो लिखित सामग्री है, उसका मूल्यांकन, तात्कालिक इतिहास की दृष्टि से अनिवार्य है।

इसी नाम के और भी मुनि हुए हैं जो इस प्रकार हैं —

३९. १. इस प्रति मे अमरचंद वाला पद्य नहीं है, पुष्पिका इस प्रकार है —
इति श्रीमन्मानकविविरचितायां संजोगद्वात्रिंशिकायां नायक नायका परसपर संजोगनाम चतुर्थोनमाद छै। लिषत वैष्णव ध्यानदास पठनार्थं हरदेवजी सांवत १७४१ फागुण बदि १३ दिनों मुकांम पुनजौतैरोसर छै। इसमें ७० ही पद्य हैं।

प्रति २. सं० १७६१ वर्षे माह बदि ४ बुधे मुनि पुन्यसागरेणात्मार्थं लिषितं शुभमस्तु। इसमें अमरचंदवाला पद्य है।

प्रति ३. एक १८वीं शताब्दी के हजारे में संकलित है।

प्रति ४. इसमें ७३ पद्य ही हैं। अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है —
संवत १७६३ वर्षे फागुन सुदि १३ दिने लिषितं पूज्य श्री ऋषि श्री ५ दामाजी पूज्य ऋषि श्री ५ वरस्यंघजी तस्यानुशिष्य लिखितं मुनि बालजी श्री मुजियावर मध्ये लिपीकृतः ॥ पठनार्थं भोजक नन्दा नो चोपडो छे।

उदयपुरकी धोलीबावड़ीके रामद्वारा में भी सं० १७७४ की एक प्रति है।

१. **मान मुनि** — महिमासिंह जो खरतरगच्छीय शिवनिधान के शिष्य थे। इनका समय १७वीं शती है।

२. **मान** — इनका उल्लेख सन् १६३२ ३४ के खोजविवरण में आया है। लक्ष्मणचरित्र, नरसिंहचरित्र, नखशिख, हनुमानपचासा आदि इनकी रचनाएँ हैं।

३. **मान** — माताजी का गीत, तमाखूपच्चीसी **और** फर्रुखसियर के कवित्त, ये रचनाएँ किसी मान कवि कृत हैं। रचयिता ने किसी भी कृति में रचनाकाल नहीं दिया है, पर जिस गुटके में तमाखूपच्चीसी और फर्रुखसियरके कवित्त प्रतिलिपित हैं उसका लेखनकाल स० १७७४-१७८० है। तमाखूपच्चीसी का प्रतिलिपिकाल स० १७७६ और फर्रुखसियर कवित्त का १७८० है। इन उल्लिखित संवतों से तो रचनाओं का पूर्वकालिक होना स्वतः प्रमाणित है। फर्रुखसियर कवित्तों में कवि ने सर्वत्र बादशाह का वार्तमानिक प्रयोग किया है जो इस बात का परिचायक है कि उनकी विद्यमानता में ही ये लिखे गए थे। बादशाह की सत्ता का पूरा समर्थन किया गया है। फर्रुखसियर का राज्यकाल स० १७६९-१७७५ तक का रहा है। अतः सूचित समय के अंतर्गत ही ये कवित्त लिखे गए थे। ये रचनाएँ किस मान कृत हैं, प्रमाणाभाव में निश्चित कह सकना कठिन है। इन सर्वथा अज्ञात कृतियों का विस्तृत परिचय लेखक कृत राजस्थान के अज्ञात साहित्य वैभव में दिया गया है।

२०१ रघुबर[37] — इनके प्रेमविनोद का वर्णन करते हुए दृष्टिकूटक कविता का वैशिष्ट्य बताया है और उदाहरणस्वरूप यह पंक्ति उद्धृत की है —

सारंग ने सारंग गह्यो सारंग पहुँच्यो आय।

—पृष्ठ १२३

वस्तुतः यह रचना रघुवर कवि की नहीं है। कारण कि प्रेमविनोद का प्रणयन-काल स० १९२९ है और उपर्युक्त पद्य १८वीं शताब्दी के गुटकों में प्राप्त होता है। यहाँ मेरे निजी संग्रहस्थ गुटके से इसी आशय का आंशिक परिवर्तित रूप उद्धृत है।

---

३७. २०१ रघुबर – प्रस्तुत रचयिता के विषय में प्रमाणाभाव में कुछ कहना संगत न होगा पर जो प्रमाण (सन् बारह सै असी है, संबत देव बताय। वोनईस सै ओनतीस मे सो लिपि कहेउ बुझाय॥) उपलब्ध है, उससे तो सन् १२८० फसली या संवत् १९२९ ही सिद्ध होता है। अनुसंधान अपेक्षित है।

—खोजविभाग।

सारंग सारंग कुं ल सारंग लीधो हस्थ।
जल सुन विष वैरी भयो सब सिणगार कयस्थ ॥
सारंग सारंग कुं चली सारंग आवत दीठ।
हार चीर सारंग सरण सारंग सरण पयठ ॥
सारंग सारंग कुं गह्यो सारंग बोल्यो आय।
जो सारंग सारंग करै तो मुख को सारंग जाय ॥
सारंग सूवै निसह भर सारंग उभौ बार।
उठ सारंग सारंग ग्रह तातै सारंग मार ॥

सूचित पद्य के पार्श्व पर सारग शब्द के सभावित अर्थ भी इस प्रकार दिए हैं —

'सारंग नाम = अली, मोर, हिरण, सर्प, कुंभ, पाणी, खड्ग, चौर, मूर्ख, दीपक, काजल; वालम (प्रीतम) पर्वत, रवि, ससि, भ्रमर, अश्व, कुंजर, कुरज, पपीहा, सिंह।' अनेकार्थ साहित्य में अन्यत्र सारग शब्द के और भी अर्थ मिलते हैं।

२५१ वटुनाथ या वटुकनाथ — शनिचरित्र और आनद-रसवल्ली का विवरण दिया गया है। लेखक ने स्वपूर्वजों का परिचय विस्तार से दिया है। उनके अस्तित्वसमय और निवासस्थान के विषय में टिप्पणीकार मौन है। केवल भाषा के आधार पर यह सभावना प्रकट की गई है कि 'यह राजस्थान के या गुजरात की ओर के जान पड़ते हैं'। इन पक्तियों के लेखक की समति में यह वटुनाथ या वटुकनाथ वही होने चाहिए जो भरतपुरनिवासी थे और वहाँ के नरेश बलवतसिंह के लिये जिन्होंने 'रासपचाध्यायी' का सृजन सं० १८९६ आश्विन पूर्णिमा को किया था। इनके पिता का नाम भी ऋषिराम था। अपनी कृति में यह अपने को वटुनाथ या वटुकनाथ सूचित करते हैं। विवरणिकातर्गत वर्णित दोनों कृतियाँ भी इन्हीं कवि कृत विदित होती हैं। प्रश्न रह जाता है आश्रयदाता के नाम के उल्लेख का। समाधान में कहा जा सकता है कि संभव है उपर्युक्त कृतियों, जिनका प्रतिलिपिकाल विवरणकार ने सं० १८७५ दिया है, के प्रभाव से ही इन्हें राजदरबार में समुचित स्थान प्राप्त हुआ हो और तदुत्तरवर्ती रचना, रास पचाध्यायी में राजा की प्रशंसा की गई हो

३८८ सुंदरलाल — विवरण में इनकी 'सनेहमंजरी', 'निकुंजरसमंजरी' और सिद्धात आदि फुटकर कृतियों का समावेश किया है। मुझे अपनी अनुसंधानयात्रा में एक ऐसा २०वीं शती के प्रारंभकाल में लिखा गुटका प्राप्त हुआ है जिसमें जयपुर के कतिपय अज्ञात कवियों की रचनाएँ प्रतिलिपित हैं। इसी

में प्रस्तुत कवि की दो रचनाओं का भी समावेश है—'गंगा-भक्ति विनोद (पंडितराज जगन्नाथकृत गंगालहरी का अनुवाद) और 'गोपीप्रेमप्रकाश'। प्रथम कृति तो १६वें त्रैवार्षिक विवरण में प्रकाशित है। उसमें पाठभेद काफी है। दूसरी कृति अज्ञात है।

२१२ सुखलाल मिश्र — 'कृष्णस्तोत्र' नामक इनकी लघुतम कृति का विवरण दिया गया है। रचनाकाल और रचनाकार का परिचय अज्ञात है।

सुखलाल मिश्र यों तो संस्कृत के विद्वान् थे। इनकी एक संस्कृत भाषा में निबद्ध रचना मेरे संग्रह में सुरक्षित है। नाम है 'शृंगारमाला'। इसका रचनाकाल सं० १८०१ ज्येष्ठ सुदि ६ या ६ है। इसकी प्रशस्ति में कवि ने स्वनिवासस्थान और अपने पूर्वजों का विस्तृत परिचय दिया है — विष्णुदत्त – नारायण – दामोदर–रामकृष्ण – तुलसी – माधव – गंगाराम – हृदयराम – बाबूराय तत्पुत्र कवि सुखलाल मिश्र पानीपत से ६ कोस दूर घटोत्कच के निकट 'घरोंदा' ग्राम का निवासी कौशल्य गोत्रीय माध्यंदिनीय गौड़ विप्र था। कवि के पूर्वज आयुर्वेद और साहित्यादि शास्त्रों के ज्ञाता एवं अनुरागी जान पड़ते हैं। विद्वत्परिचयार्थ शृंगारमाला की प्रशस्ति उद्धृत की जा रही है —

श्री गुरुदेव

संसारसर्पमुखमर्दनतार्क्ष्यरूपाः विज्ञानभापटलपाटितमोहकूपाः।
येषां कटाक्षकलिताः फलिताः लसन्ति गंगेशमिश्र गुरवः सततं जयन्ति ॥१॥

कवि वंशवर्णन —

पानीयप्रस्थात् परतस्तु मार्गो षट्क्रोशमध्ये हि घटोत्कचस्य।
ग्रामो घराडे ति प्रसिद्धनामा पूर्वेस्थितास्तत्र पुरा मदीयाः ॥१०।

श्रीविष्णुदत्तस्यस्वकुलाब्जभानुर्नारायणस्तत्तनुजो बभूव।
कौशल्यगोत्रो यजुषामधीता माध्यंदिनीयो द्विजगौडजोसी ॥११।

तस्यात्मजो स्यादगमत्तु काश्यां षड्दर्शनी वैरमपुत्रमंत्री।
दामोदरो वैद्यकग्रंथकर्ता श्रीरामकृष्णस्तदपत्यमासीत् ॥१२॥

तुलसीमाधवगंगारामाख्यास्तत्तनूद्भवाश्चासन्
माधवराम सुपुत्रो हृदयराम इति सुगीयते मनुजैः ॥१३॥

साहित्ये रसग्रंथकृद्बुधवरस्त्यांगजातः कवि –
र्बाबूराय इति प्रसिद्धमगमद्बूवासीपुरे चार्गले।
तत्पुत्रेण कृता मया रसमयी माला रसोपासका
स्तान् प्रापयितुं गुणैरवियुता कल्पारसब्रह्मणी ॥१४।

सुखलालेन सुकविना रचिताश्रृंगारमणिमयीमाला ।
सा रसिकानां सुगुण सुवर्णविलामातनुताम् ॥१५॥
सुधांशु - व्योमवसिवन्हौ वर्षे ज्येष्ठसिते रस ।
शुभा श्रृंगारमालेयं रविपुष्ये सुगुम्फिता ॥१६॥

इति श्रीमत्साहित्यशास्त्रानुभावरसिकगौडविप्रवरबाबूराय मिश्रसुनु सुखलालमिश्रेण विरचितायां श्रृंगारमालायां संकीर्ण वर्णनं नाम तृतीयं विरचनम् ॥ श्रीरस्तु ॥

२६५ सूरदास — सुप्रसिद्ध कृष्णलीलागायक सूरदास से भिन्न इस कवि के — इसकी भाषा के आधार पर — राजस्थानी होने की समावना प्रकट की गई है।

मेरे हस्तलिखित ग्रथसग्रह मे सूरदासकृत 'पारद उजागर' नामक रचना सुरक्षित है। इसकी भाषा राजस्थानी गुजराती मिश्रित है। कवि ने कथाद्वारा रहस्यवाद की ओर विद्वज्जनोंका ध्यान आकृष्ट किया है। डिंगल के विशिष्ट प्रभाव के कारण ऐसा लगता है कि कवि चारण रहा हो।

'कल्याणराव पाढगति' के प्रणेता भी एक सूरदास हैं जिनकी रचना मेरे संग्रहमे सुरक्षित है। इसमें भी रचना काल सूचक कोई उल्लेख नहीं है पर प्रति का लेखन काल सं० १७७० है। कल्याणराव कहाँ के थे, यह और उनका समय स्थिर होने पर कविकाल ज्ञात हो सकता है। यदि बीकानेरनरेश ही कल्याणराव हों तो कवि का समय १७वीं शती स्थिर हो जाता है। कल्याणराव कल्याणसिंह का समय स० १५९८ १६३० तक का है। 'पारद उजागर' और 'कल्याणराव पाढगति' की प्राचीन प्रतियों की प्राप्ति पर ही सूरदास का समय निर्धारित किया जा सकता है। कल्याणराव पाढगति इस प्रकार है —

कल्याणराव पाढगति

मेघारव गुंजे जहां गैवर है हिंसत पायक पग कर
सूरदास पंडितवर असगण पाढगति कल्याणराव भण

छंद पाढगति

घण घण घण घण घंटारव छक्कि छिंकार करंत करे।
जिहां द्रमकि द्रमकि द्रमकि द्रम द्रमकि द्रम बज्जहि फुरड फुंकार खरे॥
जिहां हुग हुग अंकुस मुडहि मुड गहि नागडि कि बज्जहि सहल भलं।
कल्याणराव करवार ग्रहित कर मागडदिकि अणहण द्रदण दलं।१॥
हरि हरि हरि हरि हरि हुग हुग हुग हुग हैं हिंसत खकार करं।
जिहांणु कडुकणु कडुकणु कडुकणु कडुक नागडदकि तडबहि धुपं धुपं वहंत धुरे।

जिहां धि धि धि धि धि धिधिकट धि धि कट चाचं चचपुट चाल चलं ।
कल्याणराव करवार प्रहित क्र भा गड्डिदिकि भ्रणहण द्रहण दलं ॥२॥
ध्याघंत सुरध्वनि स्वर गह मप ध्वनि त्रणित्रिणी त्रिणि त्रिणि त्रिणिक नरं।
त्रां त्रां त्रां त्रां उलघट तद्‌घट पय पय रण पायक प्रणं ॥
घण घण घण घण घ्रणण कि घुण घ्रण घागडदिकि घगहि घाव दलं ।
कल्याणराव करवार प्रहित कर भागडदिकि भ्रणहण द्रहण दलं ॥३॥
डिहु डिहु डिहु डिहु डिहु द्रुम कटि डिहु डिहु णुक णुक णुक सद्दधरं ।
जहां रां रां रां रां रांरां अरराट अरघट अरबद् वरं ॥
थिगडदां थिगडदां थिगडदिकि थिगडदां थि थि थि थकार करे ।
कल्याणराव करवार प्रहित कर भागडदिकि भ्रणहण द्रहण दलं ॥४।

कलस

झण झण झण झण झण झणांट गुंजत है गैवर ।
घुघुडदि घुघुदकि घुघुदकि घुघुदकि घुघदंत कहै ॥
घगडदिकि घागडदिकि घागडदिकि घागडदिकि घर्‌ र्‌ र्‌ र्‌ र्‌ ।
हट पिउ घंट कबूतर री बोली मुडहि मुंडगहि व्यक्रम बंसर बिजयत ॥
तन नर नरिंद समुहड भिडग ।
कल्याणराव रण रस चढत नर नरिंद समुहड भिडण ॥५॥

इति श्री कल्याणमल्ल राजा री पाढगति संपूर्णम् ।
पं० श्री श्री हर्षसागरजी तच्छिष्य ऋद्धिसागरेण लिपिकृतं शीघ्रं शिणलाग्रामे
चेला घुस्यालचंद वाचनार्थं ॥ श्रीरस्तु ॥

इसी सूरदास कवि का एक छप्पय सं० १७६२ के गुटके में इस प्रकार प्रतिलिपित है—

कवित्त छप्पय

जब बिलंब नहीं कियो जबे हरणाकुश मार्‌यो ।
जब बिलंब नहीं कियो केस गेहे कंस पछाड्यो ॥
जब बिलंब नहीं कियो सीस दस रावण कटे ।
जब बिलंब नहीं कियो असर दल दलहे दपटे ॥
सूरदास बिनती करे सुन्य सुन्य हो दषमण रवण ।
काट फंद मोह अब केसो अब बिलंब कारण कवण ॥

इस गुटके में सूरदास की और भी डिंगल एवं पिंगल की कई रचनाओं के साथ सिरोमणि, अखमाल, काशीराम, गोविंद, कृष्णदास, नददास, जान, खेम, ताब,

हंस, आनंद, रघुराम, गंग आदि कवियों की ग्रंथात्मक और स्फुट कृतियाँ सुरक्षित हैं। विशेषकर इतिहास से संबद्ध नूतन तथ्यों का तथा दिल्ली की राजावलियों का सुंदर संकलन है। ब्रज और राजस्थानी भाषा की अज्ञात सामग्री पर्याप्त है।

३०१ सेवासिंह — इनके द्वारा रचित 'नलचरित्र' या नैषध का परिचय दिया गया है। कवि की नामावली, जो अब की बार प्राप्त हुई है, के आधार पर पूरा वशवृत्त दिया गया है। इसमें कवि के पितामह लुहगराइ को फतेपुर राज्य का संस्थापक बताते हुए नगर की स्थिति राजस्थान में बताई है। वह ऐतिहासिक दृष्टि से विचारणीय है। कवि कहाँ के थे, यह अभी यहाँ गौण है। मुख्य प्रश्न यह है कि क्या राजस्थान शेखावाटी स्थित फतहपुर किसी लुहागराय ने बसाया था? अन्यान्य ऐतिह्य तथ्यों से सिद्ध है कि सूचित फतहपुर क्यांमखाँनी नवाब फतहखाँ ने सं० १५०८ चैत्र शुक्ला ५ के दिन अपने नाम से बसाया था जैसा कि 'क्यांमखाँरासा' की इन पंक्तियों से प्रमाणित है —

> **नींव दई षटकोट की येक घौस कहि जांन।**
> **नगर फतिहपुर आपनौं कन्यौं फतन असथांन ॥३७७॥**
> **नयो बसायो फतिहपुर हो सरवर उद्यान।**
> **नांव आपनै फतेहखां कन्यो बडो असथांन ॥३७८॥**
> **पंद्रहसै जु अठाससै बस्यो फतहपुर बास।**
> **सुद पांचै तिथ ही तबहि और चैतकौ मास ॥३७९॥**
> **सन सत्तावन आठ सै जग मैं कन्यो प्रकास।**
> **माह सफर दिन बीसवैं बस्यो फतहपुर बास ॥३८०॥**
> × × ×
> **कन्यो फतिहपुर फतिहखां इतहि आइ तिंह बार।**
>
> —कवि जान कृत 'क्यामरासा, पृ० ३२।

इसके अनंतर नवाबों ने ही इस नगर का विकास किया। लुहागराइ नामक कोई प्रतिभाशाली शासक वहाँ रहा हो, कभी न तो सुना गया और न किसी इतिहास में इसका उल्लेख ही पाया गया। यद्यपि खोजविवरणकार ने पृष्ठ ६१६ पर यह पंक्ति भी उद्धृत की है — 'लुहगराइ तेहि भुवन राज्य फतैपुर थप्पिय'। संभव है और कोई फतहपुर रहा हो। खोजविवरणकार ने शेखावाटीवाले फतहपुर से इसका संबंध व्यर्थ ही स्थापित करने का प्रयत्न किया।

३०६ स्यामदास — इनके द्वारा रचित भागवत धर्म के स्तंभ समान विष्णुस्वामी के अपूर्ण चरित्र का परिचय देते हुए रचयिता स्यामदास के अस्तित्व - समय - विषयक अनभिज्ञता प्रकट की है।

घोलीबावड़ी, उदयपुर स्थित रामद्वारा में एक हस्तलिखित गुटका सं० १७७३ का प्राप्त हुआ है। उसमें अन्य अज्ञात रचनाओं के साथ स्यामदास प्रणीत 'स्यामबत्तीसी' या चतुराष्टक संकलित है। इसमें भगवान् कृष्ण की स्तुति भावपूर्ण भाषा में की गई है। रचना सरस और प्रांजल है। इसके प्रत्येक पद के अंत में 'स्याम' या स्यामदास का नाम आता है। कृतिकार परम वैष्णव लगता है। संभव है कि विष्णुस्वामीचरित्र के रचयिता भी वही स्यामदास हों, क्योंकि विषयसाम्य से कल्पना को बल मिलता है। उदयपुर, सूरजपोल स्थित निंबार्क मठ के हस्तलिखित ग्रंथसंग्रह में स्यामदास वैष्णव द्वारा प्रतिलेपित कृतियों की संख्या पर्याप्त है और उनका समय लगभग १८ वीं शती है। स्फुट काव्यसंग्रहों में भी स्याम या स्यामदास के कृष्णभक्तिपरक पद्य पाए जाते हैं। इनकी भाषा ब्रजी है।

रहा प्रश्न इनके समय का, अभी तो इस संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि सं० १७७३ के पूर्व ये विद्यमान थे।

३०८ हंसराज — इनकी 'ज्ञानद्विपचाशिका' की अपूर्ण खंडित प्रति से कृति का परिचय खोजविवरण में दिया गया है। रचनाकाल अज्ञात है। वह अपने को वर्द्धमानसूरि का शिष्य बताता है।

मेरे संग्रह में 'ज्ञानद्विपचाशिका' की पूर्ण प्रति विद्यमान है जिसका आदि पद्य इस प्रकार है —

> **ओंकार रूप ध्येय गेय है न कछु जानैं**
> **पर परमत मत मत छहुं मांहि गायो है।**
> **जाको भेद पावै स्यादवादी और कहो**
> **जानै मानै जातैं आपा पर उरझायो है॥**
> **दरब तैं सरबस एक है अनेक तो भी**
> **परजै प्रवांन परि ठहरायो है।**
> **ऐसो जिनराज राजा राज जाकै पाय पूजै**
> **परम पुनीत हंसराज मन भायो है॥ १॥**

वर्द्धमानसूरि के ये शिष्य थे जैसा कि इस कृति के अंतिम पद्य से प्रकट है। इसी कवि की एक और अनूदित कृति नेमिचंद्र रचित 'द्रव्यसंग्रह' का बालावबोध 'जैन गूर्जर कविओ', भाग ३ पृष्ठ १६२४ पर उल्लिखित है। इसकी अंतिम प्रशस्ति में कवि ने रचनासमय तो नहीं दिया है, पर थोड़ा परिचय अवश्य दिया है। इससे प्रकट है कि कवि खरतरगच्छ का अनुयायी था और वर्द्धमानसूरि का शिष्य। पर समझ में नहीं आता कि ये वर्द्धमानसूरि कौन थे? क्योंकि खरतरगच्छीय पट्टावलियों में और तात्कालिक अन्य ऐतिहासिक साधनों से पता नहीं चलता कि

जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग कवि ने किया है, उस समय इस नाम के कोई आचार्य हुए हों। कविप्रदत्त प्रशस्ति इस प्रकार है—

> **द्रव्यसंग्रह शास्त्रस्य बालावबोधो यथामतिः।**
> **हंसराजेन मुनिना परोपकृतये कृतः॥**
> **पौर्वापर्य विरुद्धं यल्लिखितं मयका भवेत्।**
> **विशोध्यं धीमता सर्वं तद्दाधाय कृपां मयी॥**
> **खरतरगच्छनभोगणतरणीनां वर्द्धमानसूरिणां।**
> **राज्ये विजयनिनिष्टा नीत्तोय सहसि मासैव॥**

लेखनकाल स० १७०६ है। अतः इस काल के पूर्व इनकी स्थिति सुनिश्चित ही है। इस नाम के और भी जैन कवि हुए हैं, पर उनका समय १७ या १६ वीं शती हैं।

३१३ हरि कवि[38] — विवरण में इनकी 'भाषाभूषणटीका' का परिचय दिया है। आगे बताया गया है कि 'रचयिता ने कुछ अपना भी वृत्त दिया है जिसके अनुसार ये त्रिपाठी ब्राह्मण थे। पिता का नाम रामधन था जो शालिग्रामी सरजू और गंगा के संगम पर स्थित सारन जिले के अंतर्गत गोआ परगना मे चैनपुर ग्राम के निवासी थे। ये (रचयिता) इसे छोड़ मारवाड़ में जा बसे —

> **सालग्रामो सरजू की मिली गंग सों धार।**
> **अंतराल मो देश है सो सारनि सरकार॥**

३८. ३१३ हरि कवि – हरि कवि या हरिचरणदास (हरि कवि उपनाम है और हरिचरणदास वास्तविक नाम) का परिचय अनेक खोजविवरणों (सन् १६०४ की संख्या ४, ४८; सन् १६०६ की सं० ४७, २५५; सन् १६०६ की सं० १०८; सन् १६१७ की सं० ७१; सन् १६२० की सं० ५६; सन १६४१ की सं० ३१३, ३१५, ३१६ और संवत् २००४ की सं० ४३१) में आया है। संवत् २००४ के खोजविवरण के अनुसार लिया गया विवरण यों है — उपनाम हरि कवि। चैनपुर (सारन, विहार) के निवासी। पिता का नाम रामधन। पितामह का नाम वासुदेव। इनके पूर्वज कोई विश्वंभर थे। पहले राज बढ़इया ग्राम (नवापार के अंतर्गत) के राजा विश्वसेन के आश्रित। बाद में ये कृष्णगढ़ (राजस्थान) चले गए और वहाँ के राजा विरदसिंह के आश्रय में रहने लगे। जन्म संवत् १७६६। संवत् १८३४ के लगभग वर्तमान। खोज में इनकी अनेक पुस्तकों के विवरण लिए गए हैं — कविप्रियाभरण, कविवल्लभ, भाषाभूषण की टीका, रामायणसार, सभाप्रकाश, बिहारी सतसई की हरिप्रकाश टीका। —खोजविभाग।

परगना गोश्रा तहाँ लसैं चैनपुर ग्राम ।
तहाँ त्रिपाठी रामघन वास कियो अभिराम ॥
ताके सुत 'हरि कवि' कियौ मारवाड़ मैं वास ।
भाषाभूषण ग्रंथ की टीका करी प्रकाश ॥
पुरोहित श्रीनंद को मुनि शांडिल्य महान् ।
मैं हौं तिन के गोत में मोह······॥

टिप्पणीकार ने उपर्युक्त पंक्तियों में कवि का परिचय उन्हीं के शब्दों में दे दिया है। कवि ने 'भाषाभूषण' की टीका में स्थान का उल्लेख नहीं किया है, पर इसी कवि की एक अज्ञात रचना 'कर्णाभरण' मुझे प्राप्त हुई थी — जिसकी मूल प्रति तो मैं आगरा की 'क० मु० हिंदी विद्यापीठ' को भेंट कर चुका हूं — इसकी अंतिम प्रशस्ति में कवि ने अपना कुछ विशेष परिचय देते हुए मारवाड़ के निवासस्थान किशनगढ़ का निर्देश इस प्रकार किया है —

राजत सुबे बिहार मैं है सारनि सरकार ।
सालग्रामी सुर सरित सरजू सोम अपार ॥३८॥
सालग्रामी सुर सरित मिली गंग सौं आय ।
अंतराल मैं देस सो हरि कवि को सरसाय ॥३६॥
परगना गोश्रा तहां गांव चैनपुर नाम ।
गंगा सौं उत्तर तरफ तहं हरि कवि को धाम ॥४०॥
सरजूपारी द्विज सरस वासुदेव श्रीमान ।
ताको सुत श्रीरामघन ताको सुत हरि जान ॥४१॥
नवापार मैं ग्राम है चढया अभिजन तास ।
विस्वसेस कुल भूपवर करत राज विभास ॥४२
मारवाड़ मैं कृष्णगढ तिय किय हरि कवि वास ।
कोस जू कर्नाभरन यह कोनौं है जु प्रकास ॥४३॥

प्रशस्ति से कवि के पितामह का नाम वासुदेव ज्ञात हुआ और कृष्णगढ़ निवास भी। खोजविवरण के पृष्ठ ३१३ पर नागरीप्रचारिणी सभा की जिस प्रति से विवरण लिया गया है उसका प्रारंभिक अंश छूट गया है। मैंने अपने संग्रह की प्रति निकाल कर देखी तो उक्त अनुभव हुआ। त्रुटितांश इस प्रकार है —

॥ गणेशाय नमः ॥

अथ हरिचरणदासजी कृत भाषाभूषण सूत्र लिख्यते ।

दोहा

तुलसी सोभित चरण मैं गल तुलसीदल माल ।
बिहरत राधा संग मैं जमुना तट नंदलाल ॥ १ ॥

अथ अलंकार, अथ उपमा लछन—
उपमान रु उपमेय जहां वाचक धर्म सु चारि ।
पूरन उपमा हीन तहां लुप्तोपमा बिचारि ॥ २ ॥

अथ पूर्णोपमा उदाहरण —
अंबुज से लोयन अमल मधुर सुधा सी बान ।
ससि सो उज्ज्वल ति बदन पल्लव से मृदु पान ॥ ३ ॥

अथ लुप्तोपमा वर्णन—कावद छद ।

मिश्र बधुविनोद और तदनुगामी अद्यावधि प्रकाशित हिंदी और राजस्थानी भाषा के इतिहासों में इन्हें किशनगढ़ का मूल निवासी ही बताया गया था । उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से अब तो भ्रामक परपरा समाप्त होनी चाहिए ।

इसी त्रैवार्षिक विवरण मे संख्या ३१५,३१६ में जिस हरिचरणदास का उल्लेख है वह हरि कवि ही हैं । अर्थात् स० ३१३,३१५ और ३१६ वाले कवि भिन्न न होकर एक ही व्यक्ति हैं । पर परिचय जिस ढग से दिया गया है उससे तो यही प्रतीत होता है कि सभवतः ये तीन भिन्न व्यक्ति हों । रामायणसार, बिहारीसतसई टीका, जसवंतसिंह कृत भाषाभूषण के टीकाकार एक ही महानुभाव हैं ।

कवि हरिचरणदास ब्रजभाषा के सुकवि और उत्कृष्ट विवेचनकार थे । इनकी टीकाओं का पारायण करने का जिन्हें अवसर मिला है वे कह सकते हैं कि उनमें काव्यतत्वादि के निगूढ़तम रहस्योद्घाटन की क्षमता अद्भुत थी । विषयसमर्थन में अपनी विशद् वृत्तियों के जो उदाहरण दिए हैं उनसे इनकी विशाल अध्ययनशीलता का आभास मिलता है । जिन दिनों किशनगढ में इनका निवास था उन दिनों वहाँ का साहित्यिक वातावरण भी अनुपमेय था । वृ द के वंशज भी साहित्यिक साधना में लीन थे । वहाँ के तात्कालिक नरेश महाराज बहादुरसिंह (राज्यकाल सं० १८०६-१८३८) और बिड़दसिंह (रा० का० १८३८-४५) भी साहित्य एवं कला के अनुरागी थे । बहादुरसिंह के कृष्णभक्तिपरक कतिपय स्फुट पद मिले हैं और बिड़दसिंह की गीतगोविंद की विस्तृत टीका किशनगढ़ के राजकीय सरस्वती भंडार में विद्यमान है जिसका प्रणयन हरिचरणदास की सहायता से किया गया था । महाराजा हरिचरणदास को अति संमाननीय दृष्टि से देखते थे । इनका चित्र भी किशनगढ़ में मैंने देखा था ।

कवि को राज्याश्रय प्राप्त होने से निराकुल भाव से साहित्यिक साधना का जो अवसर मिला था उसका इन्होंने अच्छा उपयोग किया। इनकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार उपलब्ध हैं —

१. कविवल्लभ (रचनासमय सं० १८३५), २. भाषादीपक (र० का० सं० १८४४), ३. श्रुतिभूषण, ४. सभाभूषण-प्रकाश, ५. लघु कर्णाभरण कोश, ६. बृहत्कर्णाभरण कोश, ७. रसिकप्रिया टीका तथा ८. बलभद्र कृत नखशिख टीका।

ये राज्याश्रित होते हुए भी स्वाभिमानी प्रकृति के कवि जान पड़ते हैं। इनके द्वारा रचित राजाओं की प्रशंसा में एक भी पद्य उपलब्ध नहीं है। हाँ राधाकृष्ण, द्वादशमासी, होली और विनयपदावली अवश्य मिलती है। किशनगढ़ के सरस्वती भंडार में इनकी समस्त रचनाओं का एक बहुत बड़ा सुंदर जिल्दबद्द गुटका है जो सं० १८४५ में ही कवि की विद्यमानता में राज्य की ओर से तैयार कराया गया था।

हरिचरणदास जी यों तो मूलतः बिहारप्रदेश के निवासी थे पर उनकी साहित्य-साधना - भूमि राजस्थान प्रांत में रही है। किशनगढ़ के राजपरिवार से इनका विशिष्ट संबंध रहा। राजस्थान में इनकी कृतियाँ आदर के साथ पढ़ी जाती रही हैं जैसा कि तात्कालिक हस्तलिखित प्रतियों से सिद्ध है। सीमित समय में इनकी रचनाओं का इतना व्यापक प्रचार हो जाना, इनकी पांडित्यमयी प्रतिभा का ही द्योतक है। राजस्थान प्रदेश से प्रकाशित कतिपय हस्तलिखित ग्रंथविवरणों में इनकी रचनाओं का भ्रांतिपूर्ण उल्लेख हुआ है जिसका परिमार्जन अप्रासंगिक न होगा।

हिंदी विद्यापीठ, उदयपुर से प्रकाशित 'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' नामक विवरण में पृष्ठ १७ पर 'कवि वल्लभ' का परिचय देते हुए श्री मोतीलाल मेनारिया ने इसका प्रणयनसमय सं० १८१६ सूचित किया है जो सर्वथा भ्रामक है। कवि ने स्वयं वृत्यंत में इन शब्दों में रचनाकाल दिया है—

संवत नंद हुताशन दिग्गज इंदुहु सौं गनना जु दिखाई।
दूसरो जेठ लसी दसमी तिथ प्रात ही सांवरो पच्छ निकाई॥

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि कवि वल्लभ का रचनाकाल सं० १८३६ है। पर मेनारिया जी विद्वान् होकर भी अग्नि शब्द का मर्म न समझ सके। प्राचीन साहित्य के अनुसंधायकों से यह बात छिपी नहीं है कि हुताशन — अग्नि का तात्पर्य संख्या ३ या ५ से है। पर यहाँ कवि के अस्तित्वसमय और उनकी अन्य रचनाओं में प्रयुक्त संवतों को देखते हुए ३ ही उपयुक्त जान पड़ता है। अग्नि का प्रयोग एक संख्या में तो कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। यदि मेनारिया जी इनकी और कृतियों का अध्ययन कर लेते तो यह भूल न होती, क्योंकि कवि की जितनी भी रचनाएँ

प्राप्त हैं उन सबका प्रणयनसमय लगभग सं० १८३० - ४५ तक का है। ऐसी ही एक और भूल श्री मेनारिया ने अपने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृष्ठ १८८ पर की है। वहाँ नाग शब्द से ७ का तात्पर्य निकाला गया है, पर वे कवि के आश्रयदाता के समय को ध्यान में रखकर यदि विचार करने का कष्ट करते तो इसका अर्थ ८ ही अधिक उपयुक्त ठहरता है। नाग शब्द से ७ और ८ दोनों ही अर्थ ग्राह्य हैं।

उपर्युक्त विद्यापीठ से प्रकाशित खोजविवरणिका भाग १, पृष्ठ १३५ पर हरिचरणदास की हरिप्रकाशिका नामक बिहारीसतसई की टीका का परिचय देते हुए श्री उदयसिंह जी भटनागर ने इसका रचनासमय सं० १८३४ और सं० १८५० दिया है। समझ में नहीं आया एक कृति के दो रचनाकाल कैसे हो सकते हैं? कवि ने स्वय रचनाकाल सं० १८३४ दिया है —

संवत ठारह सौ बीते तापर तीस रु चार।
जन्माठे पूरो कियौ कृष्णचरण मन धार॥

सूचित विवरण का उद्धरण सत्यवती जी महेंद्र ने 'भारतीय साहित्य' वर्ष ३, अंक ४, अक्टूबर सन् १९५८, पृष्ठ ८१ पर 'नाममाला - साहित्य' शीर्षक निबंध में दिया है। इन्होंने एक भ्रांति और खड़ी कर दी और वह यह कि रचनाकाल सं० १८३४ के आगे 'ई०' लगा दिया, जब कि सं० १८३४ विक्रमीय है। देवीजी ने यह भूल केवल हरिचरणदास के संबध मे ही नहीं की, अपितु आगे बिहारीसतसई का रचनाकाल 'सवत् १६६२ ई०' बताया है। विक्रमीय संवत् तो यह हो ही नहीं सकता और ईस्वी सन् मान लें तो भी १७४६ ठहरता है, दोनों ही सवत् बिहारीसतसई के रचनासवत् नहीं हैं। वास्तविक रचनासंवत् तो विक्रमीय १७१९ है। निबधांतर्गत और भी संवत्‌विषयक प्रमाद हैं पर उनपर विचार करने का यह स्थान नहीं।

प्रसंगतः यहाँ सूचित कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि बिहारीसतसई जैसी प्रसिद्ध कृति के रचनाकाल के विषय में इतना भ्रम क्यों? राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मदिर के हस्तलिखित ग्रंथों के सूचीपत्र भाग १, पृष्ठ १४३ पर बिहारीसतसई की एक प्रति का लेखनसमय सं० १७१५, रचनाकाल सं० १७०२ और रचनास्थान आगरा बताया है। आश्चर्य होता है ऐसे भ्रामक उल्लेखों को देखकर।

कविवर हरिचरणदास ने अपना जन्म - काल - विषयक स्पष्ट संकेत कहीं भी नहीं दिया है। परंतु मोतीलाल मेनारिया ने अपने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृष्ठ १८६ पर बताया है कि इनका जन्म सं० १७६६ में और स्वर्गवास सं० १८३५ में हुआ था। इसी भ्रामक परंपरा का अनुकरण सत्यवती महेंद्र और बाबू शिवपूजन सहाय जी द्वारा क्रमशः 'भारतीय साहित्य' और 'हिंदी साहित्य और

बिहार, में किया गया है। अच्छा होता मोतीलाल जी अपने इस कथन के समर्थन में कोई ठोस आधार प्रस्तुत करते जिससे भ्रामक परंपरा का सूत्रपात तो न होता। जन्मसंवत् के लिये अधिकृत रूप से मैं कहने की स्थिति में तो नहीं हूँ, पर सं० १८३५ में स्वर्गवास न होने का समर्थन तो बलपूर्वक कर सकता हूँ, कारण कि सं० १८३५ के बाद के इनके कवित्तव्रजम (रचनाकाल सं० १८३९), भाषादीपक (र० का० सं० १८४४) आदि ग्रंथ मिले हैं। आश्चर्य है मेनारिया जी ने अपनी खोजरिपोर्ट में कवि की एक कृति (कवित्तव्रजम) का उल्लेख किया है जिसका रचनाकाल सं० १८३९ है। समझ में नहीं आया कि एक विद्वान् के नाते इन्होंने इतना भी ध्यान नहीं दिया।

बाबू शिवपूजन सहाय जी ने हरिचरणदास जी को अपनी कृति 'हिंदी साहित्य और बिहार' में किशनगढ़ नरेश राजसिंह द्वारा सम्मानित लिखा है और इसके समर्थन में इन पंक्तियों के लेखक द्वारा प्रकाशित एक निबंध का हवाला दिया है, पर यह जँचता नहीं है। कारण, हरिचरणदास का किशनगढ़-वासकाल सं० १८३० से १८४५ तक का ही होना अनुमित है और राजसिंह का समय सं० १७६३ से १८०५ तक का रहा है।

अज्ञात कर्तृक रचनाएँ

अठारहवें त्रैवार्षिक विवरण के परिशिष्ट ३ में उन रचनाओं के आदि और अंत भाग दिए हैं जिनके प्रणेताओं का पता न चल सका था, किंतु ध्यानपूर्वक देखने से अनुभव हुआ कि इस विभाग में कतिपय कृतियाँ ऐसी भी समाविष्ट हैं जो परिशिष्ट दो में आनी चाहिए थीं क्योंकि उनमें रचनाकारों के नाम स्पष्ट दिए हुए हैं। इन रचनाओं के प्रणेताओं के संबंध में अन्यान्य तत्संबंधी मान्य साधन न भी प्रयुक्त किए जायँ और केवल अन्वेषणकर्ता की सामग्री को ही प्रमाणभूत आधार माना जाय तो भी 'अंजनासुंदरी कथा', 'अचलदास खीची री बात', 'भक्तामरस्तोत्र' आदि का समावेश परिशिष्ट दो में ही होना वाञ्छनीय था। इनमें एक प्रणेता तो ऐसे भी हैं जिनका विवरण पूर्व प्रकाशित खोजवृत्तांतों में आ भी चुका है, जैसे हेमराज।

३२५ अंजनासुंदरी कथा — इसके रचयिता मुनि माल या मालदेव हैं जैसा कि विवरण के पृष्ठ ६६२ पर दी गई अंतिम प्रशस्ति के निम्न अंश से प्रकट है—

सील भलो तिण पालीयो जसु गावइ मुनि माल रे।

इनका पूरा नाम मुनि मालदेव था, पर अंजनासुंदरी कथा के समान ही अपनी अन्य रचनाओं में भी 'मुनि माल' शब्द का ही व्यवहार किया है। मिश्रबंधु-विनोद में कवि का उल्लेख करते हुए इनका अस्तित्वकाल सं० १६५४ बताया गया है

जो ठीक नहीं है। प्रति के प्रतिलिपिकाल को ही विनोदकार के रचनासमय मान लेने से यह भ्रांति हो गई है। कवि का वास्तविक समय तो सं० १६१४ के लगभग पड़ता है जैसा कि इनकी एक कृति —'कल्पातर्वाच्य' से सिद्ध है। 'जैन गूर्जर कविओ' में कवि की उपलब्ध रचनाओं का विस्तृत परिचय दिया है। इनकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं —

पुरंदर चौपाई, सुरसुंदरी चौपाई, राजल नेमि धमाल, देवदत्त चौपाई, मालदेव शिक्षा, भोजप्रबंध, विक्रम पंचदंड कथा, बृहद्गच्छ गुर्वावली, पद्मरथ चौपाई, वीरांगद चौपाई, स्थूलभद्र बारहमासा, शीलबत्तीसी, वीर पंच कल्याणक स्त०, वीर पारणक स्त०। इनके अतिरिक्त स्फुट पद, स्तुतिपरक साहित्य प्रचुर परिमाण में प्राप्त है।

कवि ने अपना सामान्य परिचय स्वरचना वीरांगद चौपाई में इन शब्दों में दिया है —

> श्रीवडगच्छ गच्छहिं पुण्यप्रभसुरीस।
> भावदेवसूरीसर भाग्यवंत तसु सीस॥
> चउपई प्रबंध इसउ उलट धरि अंग।
> श्रीमालदेव तसु सीस कहइ मन रंगि॥

ये भावदेवसूरि के शिष्य थे। इनका संबंध भटनेर की वडगच्छीय शाखा से रहा है।

३२४ आदिसर रेखता — इस कृति के प्रणेता सहस्रकीर्ति नामक व्यक्ति हैं। इस रचना की एक प्रति सं० १७८३ की प्रतिलिपित जयपुर के ज्ञानागार में सुरक्षित है (—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची, भाग ४)।

३७५ त्रिलोकदीपिका चौपाई — इसके रचयिता नागौरी गच्छीय सदारंग के शिष्य थे, कवि ने अपने गुरु का नाम देकर ही संतोष कर लिया है। इसकी पूर्ण प्रति राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में सुरक्षित है। उसमें भी सदारंग शिष्य का ही उल्लेख है। अन्यान्य जैन ऐतिहासिक साधनों से सदारंग का समय १८वीं शती है। विवरण के पृष्ठ १०२६ पर जो संवत् दिया है वह रचनाकाल न होकर गुप्तिविषयक संकेत है। विवरण में पाठ इतना अशुद्ध छपा है कि उसमें से सार निकालना कठिन काम है। विषय का विवरण देते हुए सूचित किया गया है कि 'सृष्टि का क्रम निर्धारित करते हुए जगत् की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।' वस्तुतः बात यह है कि इस कृति में जैन-परंपरा-मान्य चौबीस दंडक का विशद् वर्णन है जिसके आधार पर जीव चार गति में भ्रमण करता है। इन चौबीस दंडकों को आगे तक के भागों में गिनाया गया है। पर अन्वेषक महोदय ने जो पाठ प्रस्तुत किया

है वह इतना भ्रष्ट है कि वस्तुस्थिति तक पहुँचने ही नहीं देता। मैं समझता हूँ अन्वेषक ने भी इसे समझने की चेष्टा नहीं की है। तभी तो विवरण में जहाँ जहाँ दंडक पाठ था वहाँ सर्वत्र मंमक शब्द पढ़ लिया गया है। अब अर्थ कोई बैठाना चाहे तो कैसे बैठे। भ्रष्ट पाठ से पदच्छेद भी इस प्रकार हो गया कि ज्योतिष व्यंतर वैमानिक जैसे शब्द भी शुद्ध रूप से मुद्रित न हो सके। जैन समाज में बहुत कम ऐसे गृहस्थ मिलेंगे जिन्हें दंडक कंठस्थ न हो।

३६४ भक्तचरितावली — इसमें महाराजा बदनसिंह का भी नाम आया है, जो भरतपुर के सूर्यमल्ल के पिता थे। इनका समय सं० १८७६ के पूर्व बताया है, वह है तो ठीक, पर ऐतिहासिक साधनों से सिद्ध है कि इनका स्वर्गवास सं० १८१२ म हुआ था। सं० १७७१ में तो वह भरतपुर राज्यांतर्गत 'डीग' के शासक हो चुके थे। मुझे लगता है कि 'भक्तचरितावली' के रचनाकाल के आधार पर ही बदनसिंह का इस प्रकार से चलता उल्लेख कर दिया है। जब किसी का निश्चित समय उपलब्ध हो तो, कम से कम ऐसे ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से प्रमाणभूत समझे जानेवाले ग्रंथों में समय का उल्लेख ठीक ठीक होना चाहिए।

काव्यरचना में परम निपुण जिस शिवराम भट्ट का उल्लेख किया गया है वह भरतपुर के पास कठौरी के निवासी रमानाथ भट्ट के पिता थे। इनकी प्रशंसा और निंदा तत्रस्थ कवि राम ने अनेक पद्यों द्वारा की है। शिष्टता के नाते भड़ौवा प्रकट करना उचित नहीं जान पड़ता।

३६६ भक्तामरस्तोत्र[३९] - इसके अनुवादक हेमराज हैं। कृति में नाम दिया है। पद्रहवें खोजविवरण में इनका उल्लेख भी आ चुका है। इस कृति का उसमें भी समावेश है। फिर कोई कारण नहीं था कि पूर्वगवेषित कवि को अज्ञात घोषित किया जाय। इस अनुवाद की अंतिम पंक्ति में 'हेमराज हित हेत' शब्द आए हैं, इससे संभवतः विवरणकार को भ्रम हो गया प्रतीत होता है कि रचना किसी

३९. ३६६ भक्तामरस्तोत्र - हेमराज कृत 'भक्तामरस्तोत्र' का उल्लेख अनेक खोजविवरणों (सन् १९०० की सं० १०८; सन् १९२६ की सं० १७८; सन् १९४१ की सं० ३६६; संवत् २००७ की सं० २१६, संवत् २०१० की सं० १४६, १७१) में हुआ है, जिनमें सन् १९४१ की सं० ३६६ की प्रतियाँ भी समाविष्ट हैं। अस्तु, सन् १९४१ - ४३ के खोजविवरण की अशुद्धि का परिहार 'संक्षिप्त विवरण' में हो गया है। — खोजविभाग।

ने हेमराज के हितार्थ रची होगी। जैनसमाज में इनकी यह रचना अत्यंत प्रसिद्ध है, शताधिक प्रतियाँ ज्ञानागारों में उपलब्ध होती हैं। कवि का परिचय मैं पंद्रहवें खोजविवरण के परिमार्जन में दे चुका हूँ।

४१६ समर कवित्त — यह कोई स्वतंत्र रचना नहीं जान पड़ती, अपितु किसी रचना का अंश मात्र है। संभव है सुप्रसिद्ध कवि सोमनाथ के ये छंद हों। जो पद्य पृष्ठ १०६० पर दिए हैं वे युद्धस्वरोदय से संबद्ध हैं। सोमनाथ की कृति 'संग्रामदप्पण' देखनी चाहिए। संस्कृत में महाभारत, नरपतिजयचर्या, समरसार युद्धस्वरोदय, मुकुंदविजय, युद्धजयोत्सव आदि कृतियाँ एतद्विषयक प्राप्त हैं। इनमें से कुलपति, तीर्थराज और राम कवि द्वारा कुछेक का अनुवाद भी हो चुका है।[४०]

*

४०. मुनि श्री कांतिसागर जी के इस निबंध के साथ नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा अब तक हुए तथा संप्रति हो रहे खोजकार्यों के संबंध में यह संक्षिप्त टिप्पणी दी जा रही है। इससे सभा द्वारा संचालित खोजकार्य का आभास तो मिलेगा ही साथ ही यह भी विदित होगा कि श्री मुनि जी द्वारा संकेतित दिशा में भी सभा का प्रयास प्रगतिमान है।

नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा संचालित हिंदीग्रंथों की खोज के परिणामस्वरूप अब तक अठारह खोजविवरण प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें प्रथम पाँच वार्षिक हैं तथा अन्य त्रैवार्षिक। इन खोजविवरणों में ज्ञात अज्ञात अनेक कृतिकारों और उनकी कृतियों के परिचय समाविष्ट हैं। हिंदीसाहित्य पर ऐतिहासिक दृष्टि के निर्माण में खोज के इन प्रयासों का अमूल्य योग रहेगा।

खोज के क्रम में प्राप्त यह सामग्री—जो विभिन्न खोजविवरणों में है इतनी अधिक मात्रा में उपस्थित हो गई है कि एक दृष्टि में उसका आकलन कर लेना संभव नहीं है। १५,४०९ ग्रंथ तथा ६,१६० ग्रंथकारों (सन् १९००-५५ तक) के परिचय इसके स्वतः प्रमाण हैं। फिर पूर्वापर खोजों में कृतियों और कृतिकारों के विषय में अशुद्धियों का निराकरण तथा उनके विषय में ज्ञानवर्द्धन भी होता रहा है। इस प्रकार यह सामग्री विपुल तो हो ही गई है, साथ ही अत्यंत बिखरी हुई है। किस रचयिता के विषय में क्या खोज हुई, यह तो तत्संबद्ध खोजविवरण में उल्लिखित है पर समग्ररूप में खोज की उपलब्धि क्या है, इसके समष्टि रूप की अपेक्षा थी। अतः विभिन्न खोजविवरणों में ग्रंथकारों की जो कृतियाँ बिखरी हुई थीं उन्हें एक स्थान पर संकलित कर देने की महती आवश्यकता थी। उदाहरण के

लिये गोस्वामी तुलसीदास का उल्लेख १५ खोजविवरणों में और उनके रामचरितमानस का उल्लेख बारह खोजविवरणों मे हुआ है। अब यदि किसी शोधछात्र या अनुसंधित्सु को जानकारी प्राप्त करनी है तो उसे तुलसीदास के विषय में १५ खोजविवरणों को और केवल 'मानस' के लिये बारह खोज-विवरणों को उलटना पड़ेगा। यह कार्य कष्ट तथा समय साध्य दोनों ही है।

इस अभाव को दूर करने के लिये बहुत पहले ही योजना बनी थी कि डा० आफ्रेक्ट के कैटलोगस कैटलोगरम् की तरह हिंदी हस्तलिखित ग्रंथों की भी सूची प्रकाशित की जाय। फलस्वरूप सन् १६०० से १६११ तक की खोजसामग्री के आधार पर 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' के नाम से सन् १६२३ में एक सूची प्रकाशित हुई थी। इसमें उपर्युक्त ग्यारह वर्षों में प्राप्त रचनाकारों तथा रचनाओं का अत्यत संक्षिप्त परिचय अकारादि क्रम से दिया गया था।

परवर्ती खोजकार्य मे सामग्री एकत्र होती गई और पुनः उसी अभाव का अनुभव होने लगा। अस्तु, उसकी पूर्ति के लिये सन् १६०० से १६४३ तक की खोजसामग्री को लेकर पुनः 'संक्षिप्त विवरण' प्रस्तुत किया गया। इस बार योजना को अधिक व्यावहारिक तथा विस्तृत किया गया। पहले खोजविवरण में जहाँ ग्रंथकार का परिचय, उसकी पुस्तकों का उल्लेख और खोजविवरणों की स्थलसंख्याओं का निर्देश तथा रचनाकाल, लिपिकाल का निर्देश मात्र था, वहाँ सन् १६००-१६४३ के संक्षिप्त विवरण में पुस्तकों के प्राप्तिस्थलों अर्थात् पुस्तकाधिकारियों के पते भी दे दिए गए। पर यह विवरण पूरा न हो सका।

सन् १६५७ में इस दिशा मे पुनः प्रयास किया गया जिसके परिणाम-स्वरूप १७ मार्च १६५८ को केंद्रीय सरकार ने ३०,०००) का अनुदान दिया। अब इस अनुदान से 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' तैयार हो रहा है। इसमें पूर्व प्रविष्टियों को यथापेक्षित परिवर्तन और संशोधन के साथ समाविष्ट कर लिया गया है। इसमें सन् १६००-१६५५ तक की खोज में प्राप्त ग्रंथों तथा ग्रंथकारों के परिचय संकलित किए गए हैं। सन् १६६४ के अंत तक यह 'संक्षिप्त विवरण' तैयार हो जायगा। —संपादक।

श्रद्धांजलियाँ

इधर हमें पुनः अनेक मूर्द्धन्य मनीषियों तथा साहित्यसेवियों का चिरवियोग सहन करना पड़ा—

आचार्य विश्वेश्वर

गत ३० जुलाई १९६२ को संस्कृत हिंदी के सुख्यात विद्वान् आचार्य विश्वेश्वर का निधन हो गया। उनका जन्म २७ दिसंबर १९०८ को ग्राम मकतुल (पीलीभीत) में हुआ था। दर्शन तथा साहित्य का अध्ययन करते हुए उन्होंने सन् १९५० ई० से संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों को राष्ट्रभाषा हिंदी में प्रस्तुत करने का कार्य आरंभ किया था। प्रथमतः विश्वेश्वर जी ने डा० नगेंद्र के अनुरोध से ध्वन्यालोक की हिंदी व्याख्या प्रस्तुत की। तबसे व्याख्याओं का यह क्रम बराबर चलता रहा। हिंदी अभिनवभारती के लिये वे चिरस्मरणीय रहेंगे। उनके महाप्रयाण से साहित्यजगत् की अपूरणीय क्षति हुई है।

डा० रांगेय राघव

डा० रांगेय राघव के असामयिक अवसान से गत १२ सितंबर १९६२ को साहित्यगगन का एक उदीयमान नक्षत्र सदा के लिये अस्त हो गया। उनका जन्म १७ जनवरी, १९२३ को आगरा में हुआ था। कविता, कहानी, उपन्यास, इतिहास, राजनीति, समीक्षा आदि विषयों पर उन्होंने प्रायः १५० कृतियों की सर्जना की। ३९ वर्ष की आयु में इतनी अधिक रचनाओं की देन साधारण नहीं है।

सुखसंपत्ति राय भंडारी

गत नवबर १९६२ में हिंदी के वयोवृद्ध सेवक तथा उन्नायक श्री सुखसंपत्ति राय भंडारी का देहांत ७१ वर्ष की वय में इंदौर में हो गया। सर्वप्रथम श्री भंडारी जी ने प्रायः ५० वर्ष पूर्व हिंदी में वैज्ञानिक कोश निर्माण की नींव रखी। उनका वनौषधि चंद्रोदय नामक विशाल कोश उनके अथक परिश्रम तथा त्याग का स्थायी स्मारक रहेगा। वे द्विवेदीयुग के सिद्धहस्त लेखकों में से थे।

श्री अन्नपूर्णानंद

गत दिसंबर १९६२ में हिंदी के यशस्वी हास्यलेखक श्री अन्नपूर्णानंद का देहावसान हो गया। काशी की हास्य - लेखन - परंपरा में उनका स्थान विशिष्ट था। जिन्होंने उनकी 'मेरी हजामत', 'महाकवि चच्चा', 'मगन रहु चोला' आदि कृतियाँ

पढ़ी हैं, उन्हें उनके मार्मिक व्यंग्य का परिचय देना आवश्यक नहीं है। काशी की मस्ती उनकी सर्जना में उत्प्रेरक थी। इधर काफी दिनों से वे लेखन से विरक्त होकर जयपुर में अपने अग्रज डाक्टर सपूर्णानद के साथ एकांत जीवन व्यतीत कर रहे थे। वहीं उनका स्वर्गवास हुआ। उनके निधन से हिंदी के हास्य व्यंग्य का एक स्तंभ धराशायी हो गया।

श्री शिवपूजन सहाय

हिंदी के पुराने सेवी तथा नागरीप्रचारिणी सभा के उपाध्यक्ष श्री शिवपूजन सहाय गत २१ जनवरी १९६३ को चिरनिद्राभिभूत हो गए। वे उन कर्मठ साहित्यसेवियों में थे। जिन्होंने तड़क भड़क से दूर रहकर अपने श्रमकणों से हिंदी के हर क्षेत्र को सींचा। वे सफल अध्यापक, संपादक तथा लेखक थे। अंतिम क्षण तक उन्होंने समरस भाव से हिंदी की सेवा की। पिछले दिनों वे बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद् के माध्यम से राष्ट्रभाषा का भंडार भर रहे थे। आपका स्वभाव बड़ा सरल तथा प्रकृति बड़ी मिलनसार थी। उनके स्वर्गवास से द्विवेदीयुग की आखिरी कड़ी जैसे टूट गई।

डा० राजेंद्रप्रसाद

देशरत्न डा० राजेंद्रप्रसाद का निधन राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा के लिये एक बड़ी घटना है। प्रायः ५० वर्षों तक राजेंद्र बाबू भारतीय राजनीति के अग्रदूत रहे। कांग्रेस मे स्वयंसेवक के रूप में सम्मिलित होकर भारत गणतंत्र के वे प्रथम राष्ट्रपति हुए। भारतीय सविधानसभा के अध्यक्षपद पर उन्होंने अप्रतिम क्षमता का परिचय दिया। गाँधी जी के वे अन्यतम अनुयायी थे। राजेंद्र बाबू प्रकृत्या सत थे और राष्ट्रपति भवन में भी अंत तक सत ही रहे। वे भारतीय आदर्शों के प्रतीक थे। उनकी सादगी, नम्रता, धर्मनिष्ठा, सिद्धांतवादिता आदि इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। उनकी हिंदी-निष्ठा सर्वविदित है। उन्होंने अपनी आत्मकथा हिंदी में लिखी। राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के रूप में हिंदी को प्रतिष्ठित करने कराने में उनका अप्रतिम योग रहा। हिंदी साहित्य संमेलन के सभापति, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के सदस्य, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के अध्यक्ष होने के साथ साथ वे नागरीप्रचारिणी सभा के संरक्षक थे। उनके महाप्रयाण से राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा की अपूरणीय क्षति हुई है।

इन सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति हम अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

*

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ६७
संवत् २०१९
अंक १ से ४

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

वार्षिक विषयसूची

विमर्श

समीक्षा

*